



अनुक्रमणिका

अभय-आश्वासन	4
अभाव-स्वभाव	5
आत्मा-आनन्द-अमृत	7
आश्रम	9
ईश्वर-भगवान-इष्ट	11
कर्त्तव्य	16
कर्म	19
कृपा	23
गुरु	25
जप-ध्यान	30
दर्शन	32
दुःख-सुख	33
दोस्त	34
धर्म	35
नाम और नामी	36
प्रकाश	37
प्रार्थना-पूजा	40
भक्ति	42
भय-अभय	43
मन	44
माँ	47
मनुष्य	54
यात्री-यात्रा	54
वासना-आशा	58
विपत्ति	59
शान्ति	60
शोक में सांत्वना	61

संसार	64
सत्संग	68
सत्य-सत्यानुसंधान	70
समाधि	71
साधना-साधक	72
सेवा	80
ज्ञान-अज्ञान-माया-अविद्या	81

# वाङ्मयी माँ

## अभय-आश्वासन

माँ हैं-किसकी चिन्ता?

जो लोग कुछ करने में असमर्थ हैं, जिनके धर्मजीवन का कोई सहाय नहीं है, उन लोगों से ही मुझे विशेष प्रयोजन है।

केवल मात्र एक बार विश्वास और श्रद्धा से प्राण भरकर जो कह सकेगा-“माँ! आप आओ, आपके बिना मेरे दिन नहीं बीतते”, तब सचमुच ही माँ अपने स्वरूप में उसे दर्शन दगी, अपनी स्नेहमयी गोद में उसे उठा लगी। दुःख की चपेट में क्षणभर के लिए उनको कोई रहस्यमय आश्रय मत समझना, याद रखना वे सर्वक्षण प्राणशक्ति की तरह तुम्हारे अत्यन्त निकट विद्यमान हैं। इसीलिए तुमको और कुछ नहीं करना पड़ेगा। वे तुम्हारा सब भार हर लगी।

मैं तो सब समय तुम लोगों के साथ-साथ ही हूँ, तुम लोग देखना नहीं चाहते तो मैं क्या करूँ। जान लो-तुम लोग क्या करते हो, क्या नहीं करते हो, पास हो या दूर जिस किसी समय, एक लक्ष्य तुम लोगों के ऊपर सदा जाग्रत है।

पूछ रहे हो तुम लोगों की भावना इस शरीर के पास पहुँचती है? हाँ, हाँ, हाँ।

यह भी तो एक छोटी लड़की है, चंचल लड़की है, जिसे हटाने से भी नहीं हटती, किसी काल में भी नहीं हटी, हटेगी भी नहीं।

इस शरीर पर तुम लोग विश्वास रखो, तुम्हारा अखंड विश्वास ही आँख खोल देगा।

श्रेय ग्रहण, प्रेय त्याग-अनुकूल सहायता ही आयेगी।

तुम्हारे मन में संशय जाग रहा है-साधना में अग्रसर होने में इतनी देर क्या? पिताजी, दोस्त लोग। तुम तो जानते हो पेट की बीमारी होने पर पहले जुलाब से पेट साफ कराके फिर डाक्टर दवाई देते हैं। इतने अशुभ कर्म किए हुए रहते हैं इस जन्म में पिछले जन्म में, जितने दिन साफ नहीं होते उतने दिन देर तो होगी ही। शरीर मन साफ होने पर जप रूपी औषध काम में आती है। तुम कोई तो जानते नहीं हो कौन कितना आगे बढ़ा, इसीलिए काम करते जाओ, किसी मुहूर्त में वह शुभलाभ आयेगा।

माँगने से ही मिलता है, पर मन में मुँह में सर्वभाव से एक होकर माँगना चाहिए।

यह शरीर सबके लिए सर्वत्र है।

मैं तो तुम लोगों को छोड़कर जाती नहीं। मैं तो तुम लोगों के पास ही हूँ।

जीवन में बुद्धि के अनेक खेल खेले हैं, हार-जीत जो होनी थी हो गई है। एकबार निराश्रय की भाँति उनकी ओर देखते हुए उनकी गोद में कूद पड़ो। तुम्ह और कोई चिन्ता करनी ही नहीं पड़ेगी।

### **अभाव-स्वभाव**

मनुष्य अभाव रूप में प्रकाशित, अभाव की चिन्ता ही करते हैं। अभाव को ही प्राप्त होते हैं। इसीलिए स्वभाव की चिन्ता करना ही कर्तव्य है, नहीं तो अभाव-अक्रिया-अगति-दुर्गति-मृत्यु। अपने में आप ही।

तुम लोग सब अभाव में हो, इसीलिए यही तुम लोगों का स्वभाव हो गया है। जैसे भूख लगती है अभाव बोध होता है-बाद में खाने से अभाव दूर होता है और तब निद्रा का अभाव बोध होता है। नींद से उठने पर घूमने एवं बातचीत करने का अभाव-बोध होता है। इस अभाव में ही स्थिति-लाभ हुआ है। इसी को यह शरीर अभाव का स्वभाव कहता है। स्वभाव म, स्वरूप म, स्व-स्थिति में अवस्थान करने की क्षमता मनुष्य में ही है। अज्ञान का जैसा पर्दा है, ज्ञान का दरवाजा भी वैसे ही है। ज्ञान के दरवाने से ही लोग स्वभाव में लौट आते हैं, स्थिति-लाभ करते हैं।

कल्पित राज्य में जिस अवलम्बन में तुम्हारा शरीर है, उसी के एक ओर अन्तराल की क्रिया है। तुम ही बहु-नाना रूप म, नाना भाव में प्रकाशित हो, एक-एक आकार का एक-एक अभाव-भञ्जन का रूप और क्या? विश्व ब्रह्माण्ड में तुम्हारा ही आदान-प्रदान, तुम्हारा ही अभाव और तुम ही स्वभाव हो तो तुम्हारी ही यह क्रिया हुई।

सब में स्वयं ही, जहाँ जिस भाव में प्रकाश केवल तत् दर्शन रूप प्रकाश की चेष्टा, दर्शक भिन्न कहाँ? वादावाद रूप भी वही तो अभाव रूप भी उसी प्रत्यक्ष के लिए। स्वभाव में जगे रहना।

जितना अधिक भगवान का चिन्तन किया जाये उतना ही लाभ। संसार जहाँ, अभाव वहाँ। मन को उनके चरणा में इच्छा से, अनिच्छा से लगाए रहने पर शान्ति मिलने की आशा है।

अभाव-बोध होता है अपनी माँगी हुई वस्तु के न मिलने पर ही तो? जहाँ अपना माँगना अपूर्ण है, माँगने पर वैसा ही फल नहीं मिलता, बार-बार उसी को माँगना और दुःख करना व्यर्थ नहीं है क्या? याचना करने से ही अभाव, दुःख पाना जगत की रीति से स्वाभाविक है। जगत है न, जगत का जो कुछ माँगोगे दुःखदायक होगा। सामयिक सुख कभी मिला भी तो

क्या? जिसको पाने से दुःख नहीं रहता, सब पाना हो जाता है, उसको ही माँगना मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य है।

अपनी क्रिया के द्वारा ही अभाव-सृष्टि; पुनः अपनी क्रिया द्वारा ही वह अभाव दूर हो जाता है। अपने को ही करना अपने प्रकाश के लिए, स्वयं ही धीरे-धीरे मृत्यु की ओर बढ़ते हैं। अमृत भोजी हो पिताजी-अमर भोजी। अमर पथ पर चलो-वहाँ मृत्यु नहीं, व्याधि नहीं।

दृष्टि जब तक सृष्टि तब तक, मैं, तुम, सुख-दुःख, प्रकाश अंधकार में द्वन्द्व। स्वभाव का काम या स्वधर्म में जोर दो। अभाव या इन्द्रिया का काम त्याग देने पर ही अन्तरात्मा जाग्रत होगी। तब उस पर दृष्टि निबद्ध कर सकने से ही दृष्टि सृष्टि सभी धाँधलिया का समाधान हो जायेगा।

### आत्मा-आनन्द-अमृत

भगवान के राज्य का खेल कितना सुन्दर है। आत्मा-एक आत्मा ही तो। फिर भी तुम, मेरा-तेरा यह सब है। यदि मेरा-तेरा कहना हो तो भगवान के नित्य दास बनो। जगत् रूप से परिवार रूप से कितने जन्म मेरा तेरा करते आए हो। मैं अमृत आत्मा। एक ब्रह्म द्वितीय नास्ति-उन्ही का तो। यदि मेरा-तेरा रहे तो भगवान में लगाओ।

जीव स्वभावतः ही आनन्द चाहता है। उसके भीतर आनन्द है इसीलिए वह चाह सकता है। ऐसा न होता तो वह न चाहता। वह आनन्द को बिना चाहे रह नहीं सकता। लक्ष्य करने पर इस आनन्द और शान्ति की आकांक्षा सभी जीवा में देख सकोगे। कीड़े मकोड़े क्षुद्र प्राणी भी ताप की ओर नहीं जाना चाहते। वे शान्ति सुरक्षा और आराम चाहते हैं। धूप में तपकर जीव जन्तु छाया और सुशीतल जल चाहते हैं। मनुष्य भी उसी प्रकार त्रिताप ज्वाला में तापित होकर शान्ति के स्थल, आनन्द के भाण्डार श्री भगवान को ढूँढ़ते हैं।

यातायात रूप में स्वरूप में वे ही हैं-मैं ही आत्माराम हूँ। ज्ञान में प्रतिष्ठित होना चाहिए। सब कुछ में तुम ही, और तुम स्वयं ही। अनन्त एकमात्र वे ही, एकमात्र मैं ही।

अपने को पाने की चेष्टा करनी चाहिए दास रूप म, आत्मा रूप म। तुम ही अमृत आत्माराम हो। तब जन्म मृत्यु का भोग क्या? अपने में आप।

साधारणतः अवलम्बन लेकर ही प्राणा की गति है, क्या साधना के क्षेत्र में क्या जगत् के क्षेत्र म। देह माने देओ देओ-भोग प्राप्ति। अपने को लेकर ही भोग। और एक बात-अपनत्व बोध न रहने से भोग नहीं हो सकता, मेरा घर, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरा शत्रु, मेरा मित्र-“मैं” इस अवलम्बन में ही प्राणा की गति है। चलते समय रास्ते का ख्याल नहीं रहता। लक्ष्य में एक बार यदि पहुँच सके तो वह मार्ग की बात बता सकता है। तब एक प्रकाश से ही सब कुछ प्रकाशित हो जाता है। एक वस्तु ही तो असल में है-पथ लक्ष्य जो भी कहो, अपने सिवाय कुछ नहीं।

तुम सब सर्वदा ही भले हो। नये रूप से भले नहीं हुए हो। भीतर भला न होने से भलाई का प्रकाश नहीं होता है।

मैं कौन हूँ? इस भाव को लेकर साक्षी की भाँति मन को रखने की चेष्टा करना। अपने को ढूँढ़ना। जितनी देर तक बैठना ध्यानस्थ अनङ्ग अटल एकलक्ष्य होना।

हर समय तुम पास ही हो। दुर्बुद्धि दूर करनी होगी। तुम भीतर-बाहर, नस-नस म, चारा ओर, विश्व म, विश्वातीत में हो।

प्रतिक्षण उनका स्मरण ही अमृतत्व।

याद रखना- स्वयं ही स्वयं का साक्षी।



अपने को पाने की दिशा एकमात्र दिशा और सब वृथा एवं व्यथा।

स्वरूप में जाने का अर्थ क्या? जो- वही। सर्वमय सर्वरूप में सर्वभाव म। वही जो स्वयं प्रकाश। वहाँ भाषा वाणी नहीं चलती है। स्वरूप अरूप -यह क्या किसी भी भाषा में कहा जा सकता है। केवल एकमात्र वही।

सत्य स्वरूप भगवान तुम्हारे ही बीच है न? इसलिए निजी चिन्तन, निजी ध्यान छोड़ना नहीं। निजी वस्तु अपने को पाने के लिए। आनन्द आनन्द ही। निरानन्द और कहाँ। वही हैं केवलमात्र।

### आश्रम

यह शरीर आश्रम नहीं बनाता। विश्वातीत विश्वव्यापक एक ही तो आश्रम-वहाँ जो कहोगे वही है। सब आश्रम ही तो इस शरीर के हैं। तुम लोग सोचते हो, तुमने जो आश्रम बनाया है वही केवल इसका है। सम्पूर्ण जगत् ही तो इस शरीर का एकमात्र आश्रम है। दो कहाँ?

एक ब्रह्मचर्य आश्रम के अभाव से ही और दूसरे आश्रम के नियम का ठीक से पालन नहीं होता है-बुनियाद पक्की न होने से जैसे मकान नहीं बन सकते।

आश्रम अर्थात् जहाँ श्रम नहीं है। भगवान के सिवाय सब ही तो श्रम है। विश्राम कहाँ? गृहस्थ आश्रम में रहकर भी यदि तद्ज्ञान से सेवा की जाय तब ठीक-ठीक आश्रमवास होता है।

तुम माता, तुम ही पिता, तुम ही बन्धु, तुम ही सखा, स्वामी सब ही एक आधार में जहाँ वहाँ विश्वव्यापक एक ही

तो आश्रम है। जहाँ सीमा का कोई प्रश्न नहीं-असीमा। सब ही एक का-एक ही। दो में ही द्वन्द्व। जहाँ आवरण वहीं अन्ध।

अमूल्य समय चला जा रहा है। आश्रमवासी लड़के लड़की अपना समय बाँधकर सत् परिवेश में रहकर मंगलमय सफलता की चेष्टा करना। किस मुहूर्त में किसके अनुभव में भगवान प्रकाश देते हैं कोई नहीं जानता। इसीलिए भगवान की ओर लगे रहना ही मनुष्य का कर्तव्य है। आश्रम में शान्ति, प्रेम, मित्रता, आनन्द, सत्य, सहनशीलता, धैर्य सभी होना चाहिए।

ब्रह्मचारी क्या तैयार किए जाते हैं? ब्रह्मचारी अपने से ही होते हैं। अपने-अपने संस्कार लेकर ही जन्म-कर्म।

जो ब्रह्मचारी साधु होने की कोशिश करते हैं, उनको त्याग का भाव रखना ही पड़ेगा। आलस्य, लालसा, प्रतिष्ठा, अधैर्य विशेष विघ्न हैं। इस ओर लक्ष्य रखकर सब काम सेवा-बुद्धि से करना। ब्रह्मचारी साधु! जिसकी जो नीति है, उस ओर भी विशेष ख्याल रखना। लोकचक्षु में जो दृष्टिकटु हो सकता है एवं जिससे अपना थोड़ा भी अकल्याण हो सकता है उस ओर जाना भी नहीं चाहिए।

गृहस्थाश्रम रूप यह सुख सामयिक और दुःखदायक है। क्लेश पद-पद पर हैं। धैर्य की यात्रा में अपना कर्तव्य यथाशक्ति करने की कोशिश करना। भगवान की कृपा के लिए नित्य प्रार्थना करना।

ऋषि पन्थ से गृहस्थाश्रम की यात्रा में चलने का व्रत लेना।

गार्हस्थ्य आश्रम का आश्रय न लेकर परमार्थ-जीवन-यापन करना कठिन है। कर सकने से अच्छा है, विशेष सोचकर देखना, भीतर से जो आता है, उन्हीं की इच्छा पूर्ण होकर रहती है।

स्वयं भगवान का अनन्त रूप घर-घर में है। आने से ही जाना पडता है, दो दिन आगे और पीछे। जिनकी सृष्टि-स्थिति जिनम लय उनकी शरण लिए बिना ज्वाला निवारण का रास्ता कहाँ!

अन्तर संन्यास ही तो संन्यास! संन्यासी होना बड़े भाग्य की बात है। सर्वत्याग। संन्यास सर्वनाश-नाश भाव का भी नाश होना। संन्यास लेना और संन्यास होना एक बात नहीं है।

### ईश्वर भगवान् इष्ट

सत्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप, सुखस्वरूप एकमात्र भगवान हैं। ब्रह्मानन्द आत्मानन्द के बिना और किसी की अपेक्षा नहीं रखता। और कुछ तो रहता नहीं। जहाँ कुछ रहता है, वह भी भ्रान्ति है।

वे ही सब करते हैं-कराते हैं। जो होने को है होगा ही।

महाशून्य ही एकमात्र उनका रूप है। जहाँ यह शून्य वहाँ महाशून्य समझा नहीं जाता। क्या है क्या नहीं, फिर सब है भी, नहीं भी। नहीं भी नहीं, है भी नहीं। सब खोकर सब पाना- यही किन्तु चाहिए।

सर्वरूप में सर्वभाव में वे ही तो हैं। जब जो होता है वे कराते हैं, वे ही करते हैं, वे ही सुनाते हैं, वे ही सुनते हैं। सब विषय में केवल उनपर निर्भर करना।

भगवान को पाना अपने को जानना है। अपने को जानना भगवान को पाना है।

कौन रूप में किसके पास वे प्रकाशित हागे, वे ही जानते हैं, इच्छामय महान् गति से किस पथ में किसको किस प्रकार अपने पास खींचते हैं, वह मनुष्य बुद्धि के अगोचर है। मार्ग में यात्रिया के तो नाना मार्ग हैं, बहुधा विपदा देकर विपदाआ का

नाश करते हैं, दुःख देकर दुःख का हरण करते हैं। इधर चलना, सभी को अपने रास्ते चलना-अर्थात् अपने को पाने की दिशा। वहाँ परम चरम स्वयं पद है।

जिससे जिज्ञासा आई है अर्थात् जिससे तुम और सब कुछ का प्रकाश वे ही ईश्वर हैं। हाँ, लाभ नुकसान की दृष्टि से भी पकड़ने की कोशिश की जाती है जरूर। भगवान को पाने की कोशिश न करना ही नुकसान है और कोशिश करना ही लाभ है। अवश्य वे स्वयंप्रकाश हैं। उनको ही प्राप्त करना एकमात्र प्रयोजन है, और सब ही अप्रयोजन है। उनके बिना मनुष्य का चलता नहीं; छोड़कर चलने की जगह नहीं है। इसीलिए छोड़ा भी नहीं जा सकता, छोड़ा जाता भी नहीं। वे सर्वस्व हैं इसीलिए उनके खेल में यह ढंग, यह चाल है। उनको छोड़कर चला नहीं जा सकता। वही एकमात्र। उनको भूलकर रहना मोह है। अज्ञानता में ही यह कष्ट है। धर्म का संसार करने पर ही मनुष्य क्रमशः दुःख की ओर से शान्ति की ओर जा सकता है। परमशान्ति पाने के लिए उनको छोड़कर होता ही नहीं।

एक जीव से बहु जीव-यह हुई जीव धारा। एक भगवान विभक्त होकर सर्व जीव रूप में हैं, इसीलिए कहा जाता है-यत्र जीव तत्र शिव।

जहाँ नहीं राम, वहीं व्यराम। राम माने आत्माराम-शान्तस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आत्मस्वरूप।

अतीत सर्वातीत प्रकाश के लिये जो जहाँ से, उनके उद्देश्य से जो करना है उनके पास ही पहुँचता है। वे ही करते हैं कराते हैं-वे ही मन्त्र और लक्ष्य स्वयं ही तो। जैसे करनेवाला-करानेवाला, क्रिया लक्ष्य एक ही तो। यह प्रकाश ही चाहिए, वे सर्वदा ही पोटली अर्थात् त्रिपुटी नाश के लिए।

स्वयं भगवान अनाम अरूप हैं। पुनः जब रूप की ओर तब अनन्त रूप । इस बात को सर्वदा याद रखना।

मिलन रूप से विरह रूप से वे ही स्वयं हैं।

दुश्चिन्ता क्या होती हो? भगवान को दूर रखने से ही दुश्चिन्ता होती है। दुर्बुद्धि का अर्थ भी वही है। भगवान को दूर रखने का नाम दुर्बुद्धि है। अथवा वे दूर हैं, यह जो बुद्धि इसीलिए दुर्बुद्धि है।

तुम्हें जिसका प्रयोजन है वह दे रहे हैं और दगे भी।

करके भी वे नहीं करते-नहीं करके भी वे ही करते हैं।

इष्ट प्राप्ति चाहिये। सम्पूर्ण प्रकाश भगवान की ही विभूति। विभूति रूप में स्वयं। आत्मा अद्वैत -और द्वैत रूप में कौन? वे ही तो इस पथ में कुछ अनुभव न होने से कोई रह ही नहीं सकता। इस ओर रहने का भी कुछ संयोग है। भगवान को छोड़कर दूसरे को इष्ट सोचने से “दो इष्ट” आ गये “दुष्ट”। कब यह दुष्ट बुद्धि जायेगी? अपने को भलीभाँति विचार करना चाहिये। विचार करके देखना आज दिनभर क्या किया? सोचना, भगवत् चिन्तन छोड़ कितनी देर था? कितनी इष्ट चिन्ता और कितनी अनिष्ट चिन्ता की अर्थात् मृत्यु की गति में था?

एकान्त न होने से श्रीकान्त को पाया नहीं सकता। एक कान्त को लेकर रहना ही एकान्तवास है।

उन्होंने ही सृष्टि की है; वे ही पर्दा हैं, पुनः वे ही उपाय बता रहे हैं।

जहाँ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त शाश्वत और भगवान के जो अनन्त नाम और रूप गुण नित्य सत्य हैं, नाम का गुण-प्रकाश भगवत् भाव के ही नाना भाँति की तरंगा का प्रकाश है। उनको लेकर मस्त हो जाना लग्न हो जाना, मग्न होना, नग्न होना ऐसा न होने से नहीं यह विश्व सब ही उसकी विभूति-वे ही-उन्हीं का क्रियास्थल। वे जो क्रियारूप म, स्वक्रिया, अक्रिया रूप गुणभाव इत्यादि विश्व में विश्वातीत में वही एकमात्र महायोगासन

में आसीन, आसीन भी जो आसन भी वह। विश्व विश्वातीत में उस मृत्यु की मृत्यु-वहीं पर ही मरण-वारण, काल-निवारण। उसी ओर गति लेने की दिशा सभी की होनी चाहिये।

सभी विषय में भगवान के ऊपर निर्भर रहो। मन का आवेदन निवेदन उन्हीं को बताना। सारा जीवन भगवान् के पीछे घूमना ही पड़ेगा, उपाय नहीं निरूपाय। उनकी सृष्टि है न। वे जब जो करते हैं सब मंगल के लिए। चुन-चुन कर स्वयं मंगल सोच लेने से भी नहीं होगा। अमृत की सन्तान, वे मृत्यु की ओर क्या जाने दरो।

जैसे तुम्हारी अंगुली छूने से भी तुमको स्पर्श करना हुआ, पर तुम अंगुली नहीं हो, कपड़े को छूने से भी तुमको छूना हुआ पर तुम कपड़ा नहीं हो। तुम्हारा अंश जैसे तुम जैसे सम्पूर्ण तुम भी तुम। एक होकर भी वे बहु हैं और बहु होकर भी एक हैं। यही उनकी लीला है। एक बालुकण में भी वे जैसे पूर्ण हैं, मनुष्य में भी उसी प्रकार पूर्ण हैं और अखण्ड में भी उसी प्रकार पूर्ण-परिपूर्ण हैं।

जहाँ बुद्धत्व वहाँ निर्वाण से भी करुणा की जा सकती है। जैसे आग से जितना भी उसका ताप क्या न लो, उसकी दाहिकाशक्ति कम नहीं होती। भगवान्- जिसको तुम लोग पूर्ण समझते हो वहाँ कुछ भी दुःखी होने की बात नहीं। अपने ही अपने अधीन, स्वाधीन।

प्रणव का अर्थ है- अक्षर ब्रह्म। सर्व अक्षर में यह अक्षर, जो क्षरित नहीं होता- वही शब्द ब्रह्म है।

वे ही परम पिता, परम माता, परम बन्धु, सखा, स्वामी- सब ही एकाधार म, सर्वनाम, सर्वरूप, अनाम, अरूप उन्हीं का तो, इसीलिए जिस प्रकार उनको सब समय मन प्राण से स्मरण करने से शान्ति हो वैसे ही करना।

सभी भगवान् की सन्तान हैं छोटे बड़े का प्रश्न नहीं है। जो गोदी में जाना चाहता है वे उसकी ओर हाथ बढ़ा देते हैं।

भगवान् का स्वभाव ही है कि वे सर्वदा द्वार खोलकर ही रखते हैं। जितना समय और जितनी शक्ति दुनिया के काम के लिए दी जाती है उतनी यदि उनके लिए दी जाय तो अपने को पहचानने का रास्ता अपने से ही खुल जाता है।

गाय जैसे अपने बछड़े को चाट चाट कर साफ करती है और सारा मैल स्वयं आत्मसात् कर लेती है, उसी प्रकार भगवान् भी अपनी सन्तान की सारी बुराइयाँ लेकर उसे शुद्ध पवित्र कर देते हैं। तद्बुद्धि से निष्काम सेवा करना।

भगवान् जो करते हैं सब ही मंगल है-मनुष्य के लिए उसे समझना कठिन है। अतः अपनी वासना पूरी न होने से दुःख होता है। बहुत समय सद् इच्छा, शुभ कर्म में भी बाधा विघ्न उपस्थित होते हैं, परन्तु याद रखना किसके भीतर से वे मुझे ले रहे हैं, मैं तो नहीं जानता-वे दयामय, करुणामय, सर्वक्षण मुझ पर करुणा ही कर रहे हैं।

भगवान् पूर्ण हैं; अतः पूर्ण प्रकाश के लिए उनके पास आना। भगवान् के अभाव- बोध से ही दुनिया का दुःख है। जहाँ भगवान् का प्रकाश है वहाँ दो नहीं, दुःख भी नहीं।

पत्थर देखने पर विग्रह नहीं, और विग्रह देखने पर पत्थर नहीं। भगवद्-विग्रह की भावना जहाँ लाओगे वहाँ भगवान् ही हैं, जैसे कहा जाता है ना सब ही भगवान् के विग्रह हैं। यदि भगवद्-विग्रह कहा जाय तब प्रत्यक्ष की भी चेष्टा उचित है। पत्थर बुद्धि रहने से दुर्बुद्धि, भगवद्-बुद्धि नहीं हुई। दुनिया के विषय-रस में जो बुद्धि है उसका तो परिवर्तित रूप है, नित्यरूप नहीं अनित्य रूप । परन्तु जहाँ एकमात्र भगवत् प्रकाश है वहाँ अनित्य की बात नहीं। तुम्हारी दृष्टि सृष्टि में नित्य नहीं है। परिवर्तनशील इसलिए जगद्बुद्धि है। उससे क्या प्रकाश होता

है? नाश। जिसका नाश होता है वहाँ स्व-प्रकाश नहीं। वहाँ स्वयं-स्वरूप कहाँ? वहाँ तो नाश, नाश नहीं होता। नाश नाश होना चाहिए।

जब तक “मैं” “मेरा” तब तक भगवत् बोध नहीं।

भगवान् को प्यार कर सकने पर और दुःख नहीं मिलता। उसके लिए जो विरह वह भी सुख ही है। उनको प्यार करने पर ही तो उनके लिए विरह होगा। विरह क्या है? भगवान् जिसम विशेष भाव से रहते हैं उसका ही विरह हो सकता है।

### कर्तव्य

कर्तव्य-जप, ध्यान, सत्संग।

अच्छा लगे या न लगे, उनको लेकर ही रहना होगा। दवाई खाने के समान निगलना होगा। हरि कथा ही कथा और सब वृथा व्यथा है। वे अच्छा न लगने से चलेगा ही नहीं। इसे हर समय याद रखना।

भगवान् जब जैसे जहाँ रखते हैं, सब ही मंगल सोचना चाहिये। उन पर निर्भर रहकर सर्वदा चलने की चेष्टा करना। वे ही पालक, चालक, यथा सर्वस्व।

अपना कर्तव्य करना-आशा नहीं रखना।

ठाकुर का शरीर, ठाकुर का मन, ठाकुर का जन-जिसके लिये जो करना, केवल उनकी सेवा समझना। मन को ऊँचा उठाकर रखने की केवल चेष्टा करना--अ-देखा और कब? केवल प्रकाश बाकी।

इधर कर्तव्य-बुद्धि जब तक, माया भी तब तक है।

वासना ही कर्तव्य रूप में दर्शन देती है।



भगवान् सर्वमय-सबके घट म, मट म, एकमात्र वे ही। भाग्य-भगवान् की कृपा है। भगवान् में मनुष्य का प्रेम होना चाहिए। ऐसा होने पर ही शान्ति, आनन्द है। सर्वदा ही उनके चरणा की शरण में रहना।

मन को उनके चरणों में लगाकर रखने की कोशिश करना। विश्वमंगल करुणासागर भगवान् की कृपा हर समय ही वर्षित हो रही है। हर समय मंगलचिन्ता करना कर्तव्य है। मंगल माने भगवत् प्रकाश की जो आशा, पूर्णानन्द, पूर्णप्रकाश जो है।

अपने को पाने की चेष्टा करना पुकारना मनुष्य का स्वभाव है। अभाव दूर करने के लिये ही पुकारते हैं। मनुष्य जीवन में उद्देश्य रहना चाहिये, भगवान्-लाभ जो त्याग हो जाता है उसके ही त्याग की बात उठती है। जो नित्य सत्य वही ग्राह्य है। जो स्वयं में बँधा हुआ है, आकर्षण भी उसका है। बंधन में ही आकर्षण है।

भगवान् के ऊपर तो कोई नहीं है। जो करते हैं वे ही स्वयं करते हैं। किसी की भी शक्ति नहीं है कुछ करने की, यही याद रखना। भगवान् के ऊपर निर्भर होना। जितने दिन तक लगता है कि कोई कुछ अनिष्ट करेगा उतने दिन थोड़ा अधिक इष्ट जप करना, इष्टदेव के ऊपर सर्वावस्था में निर्भर रहना चाहिये।

जीवजगत में मनुष्य को सहनशक्ति, धैर्य का आश्रय लेने के सिवाय और उपाय क्या है? अपने ही अपनी सांत्वना। स्वस्थ रहना। अपना अपना कर्तव्य सत् अनुष्ठान के भीतर पूर्ण करने की चेष्टा करना। मानवमात्र के लिये भगवान् चिन्तनीय हैं।

परमार्थ पथ में सहनशक्तियुक्त, धैर्यशाली, स्थिर, धीर-गम्भीर स्वयं को पाने की क्रिया में सतत् व्रती रह सकने से लहर आने से छू नहीं सकती। वही स्थिति होने की चेष्टा करना मनुष्य का कर्तव्य है।

मनुष्य ही सब ओर जयलाभ कर सकता है। मन का होश होना प्रयोजन है। जन्म जन्मान्तर के अज्ञान में पड़े रहना, वही दिशा ही अच्छी लगनी-इस दिशा को बदलना पड़ेगा। सब बात छाती ऊँची करके मुँह खोलकर कहना-इससे सत्य के तेज की वृद्धि होती है। सत्य ही सत्यथ का दीपक, दिग्दर्शक है। अपना व्यक्तित्व रखकर मिष्ट व्यवहार से जययुक्त होकर चलना। किसी के कब्जे में नहीं पड़ना। अपने सुन्दर भाव जैसे हैं-नित्य शुद्ध सद्चिन्ता में पुष्ट रखना, विक्षेप स्पर्श भी न कर सके।

सर्वदा याद रखना भगवत् कर्म साधन के लिए ही यह शरीर है। इसीलिए देह, प्राण, मन देकर उनको पकडकर रखने की केवल सर्वक्षण चेष्टा करना।

गुरु ने जो मार्ग बताया है उसी पथ पर चलने की कोशिश करना और कर्म यदि अच्छा लगे तब तद्बुद्धि से कर्म करना। देश-सेवा, गृहलक्ष्मी की सेवा, बालगोपाल की सेवा, पति-सेवा, वे ही अनेक रूपा में हैं। केवल खाने, सोने में समय व्यतीत मत करना। अमूल्य मनुष्य-जन्म, वृथा चिन्ता में नष्ट न हो। धर्मशाला में और न रह अपने घर जाने की चेष्टा करना।

दूरबोध ही दुर्बुद्धि, तत् बुद्धि जब तक नहीं होती तत् भावना में ब्रती रहने की केवल चेष्टा करना। सर्व क्रिया में क्रियारूप में केवल वे ही हैं, इसी को स्मरण रखने की चेष्टा होनी चाहिए।

मनुष्य का ही तो कर्तव्य है अपने को जानना-पाने की चेष्टा करना। मनुष्य का भगवत्प्राप्ति और सत्यानुसंधान कर्तव्य है। जिसका जो मार्ग अनुकूल है चुन लेना। गुरु जिसे जो उपदेश देते हैं अविचार से ग्रहणीय है। उपस्थित सद्ग्रन्थादि पाठ और सत्संग में रहना। सत्यस्वरूप भगवान् के लिये चौबीस घण्टे में कम से कम कुछ देर के लिए स्थिर भाव से मन को शून्य करके बैठना, जब तक गुरु का विशेष निर्देश नहीं होता।

सर्वक्रिया में तद्बुद्धि रखना। यन्त्र यन्त्री वे ही, यन्त्र रूप में जैसे चला रहे हैं चलना।

## कर्म

जिस क्रिया से भगवत् भाव उद्दीपित होता है वह कर्म ही कर्म है, और सब अकर्म हैं। जिस पथ में भगवत् भाव नहीं है वह प्रेय होने पर भी त्याज्य है और जिसमें भगवत् भाव उद्दीपित होता है वह अप्रिय होने पर भी ग्रहणीय है। सत्यलाभ की दिशा लेना ही मनुष्य का कर्तव्य है। श्रेय पथ अमृत की दिशा है। प्रेय होने पर जो आपात मनोरम है, पर परिणाम में विषमय, अमंगल, अशान्तिकर - मृत्यु की दिशा।

अप्रिय कर्म की चिन्ता मत करना। लोगों के लिए प्रिय होने की चेष्टा भी नहीं।

भगवत् क्रिया ही क्रिया और सब अक्रिया- मृत्यु पथ की क्रिया। स्वक्रिया में होना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है।

साधारण जीव के कर्म अभाव को पूर्ण करने के लिए हैं; साधक के कर्म स्वभाव में पहुँचने के लिए हैं।

परमार्थ की दिशा है क्रिया-योग और जगत् की दिशा है क्रिया-भोग। क्रिया-योग के पथ पर जो चलते हैं, वे ही मुक्ति के पथ पर पहुँचते हैं। जिसे जो धारा मिलती है उसी धारा में नित्ययुक्त होकर इसी क्रियादि में क्रियामुक्ति की चेष्टा में लगना चाहिए। नित्ययुक्त अतीत अनतीत जहाँ वहाँ प्रश्न भी नहीं उठता। जिस धारा में हो पहले एकनिष्ठ हाकर क्रिया युक्त हो तभी तो क्रिया मुक्त हागे। योगी माने नित्ययुक्त और नित्ययुक्त जहाँ मुक्ति भी वहीं।

जो कुछ स्वयं किया जाता है, उसमें कष्ट है।

प्रारब्ध है और प्रारब्ध के ऊपर भी एक स्थिति है—जहाँ अधिकारी अनधिकारी की बात नहीं है। जब बाढ़ आती है तब सब बहा के ले जाती है।

किसी को भी कुछ छोड़ना नहीं पड़ता, कर्म की पूर्णाहुति के साथ-साथ त्याग अपने से ही हो जाता है।

भाग्य भोग करने के लिए ही तो मनुष्य का जन्म होता है। जब तक नियन्त्रित के ऊपर नहीं जाया जा सकता तब तक भगवान् का विधान न मानकर तुम कैसे रह सकते हो? तब तुम्हारे कर्मों के अनुरूप ही तुम्हारे फला का विधान है। वे अपना विधान लौंघ सकते हैं या नहीं यह विचार करने की शक्ति तुममें कहाँ? उनके राज्य में सब संभव है। वे सब कर सकते हैं। किसके लिए क्या करते हैं वह विचार करने का अधिकार तुम्हें नहीं है। तुम्हारे मनमाफिक वे सब समय क्या करोगे? वे तो प्रभु हैं वे जो करते हैं सब ही तुम लोगों के कल्याण के लिए—यह याद रखना चाहिए।

शुभ मति से कर्म करो, कर्म के भीतर से ही क्रमशः उठने की कोशिश करो। सभी कामों में उनको पकड़े रहो, तब और कुछ छोड़ना नहीं पड़ेगा। तुम्हारे काम भी सुचारु रूप से सम्पन्न होंगे, लक्षपति का संधान भी सहज होगा। जब जो कोई भी काम करोगे काय मन वाक्य से सरलता और सन्तोष से उसे करना। ऐसा होने पर ही कर्म में पूर्णता आयेगी। समय होने पर ही सूखे पत्ते अपने आप झड़ के नये पत्ते दिखाई देंगे।

सत् चिन्ता की धारा जहाँ, वहाँ कर्मक्षय का पन्थ रहता है जरूर। गन्तव्य स्थान जब तक अप्राप्य है तब तक कर्म, अकर्म, विकर्म के आश्रय में कर्मानुयायी को फल भोगना ही पड़ेगा।

मनुष्य कर्म-पूर्ति के लिए जन्म लेता है और जन्म-पूर्ति के लिए भी जन्म लेता है।

शक्तिशाली पुरुष या भगवत् शक्ति जिसम प्रकाशित होती है वह अपना कर्म स्वयं बदल सकता है।

ऐसी अनेक क्रियाएँ हैं जिनम मृत्यु होने से दुर्गति होती है-सद्गति नहीं होती; अन्धकार से और अंधेरे में जाना पड़ता है। क्या ऐसा होता है, यह कहा नहीं जा सकता। वह उनकी मौज है। कर्म जिस प्रकार का है, फल भी उसी प्रकार का होगा।

जब जिस पर जिस काम का भार है वह यदि भगवत् लक्ष्य रखकर प्रसन्न मन से न करे तब “बेकार परिश्रम” से उसका कोई काम नहीं होता। मनुष्य की जागतिक सेवा का काम प्रसन्न मन से तत् ज्ञान से करना चाहिए।

जगत् की क्रिया में सामयिक आनन्द और क्लेशदायक दुःख पीछे छाया की भाँति रहते हैं। अपने को पाने का यात्री होना है। भगवान् की ओर जितना अग्रसर हुआ जाय उतनी ही क्लेशदायक क्रिया शिथिलता की दिशा होगी, यह याद रखना।

तीव्र क्रिया का आवरण हट जाता है।

सब कार्यो में उद्देश्य को बड़ा रखना।

सब कर्मों का फल तो व्यर्थ नहीं है। पूर्व कर्मानुसार कर्मभोग होता है। जब तक भगवान् में कर्मयोग नहीं होता तब तक मनुष्य को सञ्चित कर्मभोग कराये बिना वे नहीं छोड़ते हैं।

ठाकुर जो कराते हैं वही करना। शुभ मुहूर्त में वे कृपा करगे, एकनिष्ठ होकर क्रिया में व्रती रहना। अनेक समय योग्य गुरु कर लेने के लिए भी कोई क्रिया देते हैं। अन्त समय के लिए प्रतीक्षा करना। भगवान् के स्पर्श का लक्ष्य लेकर ही बैठना, जब तक जवाब न मिले, अपनी कोशिश करना, योग्यता के लिए, जवाब पाने के लिए।

ठीक से कर्म कर पाने से और गिरने का डर नहीं रहता है, जरूरत भी नहीं होती

चित्त जितना शुद्ध होगा तद्भावना में कर्म भी उतना ही सुन्दर होगा। कर्मरूप में भी वे ही हैं। कर्म के भीतर शुद्ध और सरलभाव प्रकाशित होता है। कोई मुझे स्नेह या आदर की दृष्टि से देखे या मेरा काम थोड़ा कर दे, इस पथ में आकर इन सब की अपेक्षा बिल्कुल नहीं करनी चाहिए। धैर्य और संयम के आश्रय में सर्वक्षण रहना। बहुत से दूध में जैसे एक बूँद दही पड़ जाने से जैसे सारा दूध दही हो जाता है वैसे ही कर्म में थोड़ा भी क्रोध का संचार विशेष हानिकारक है-याद रखना।

जो काम करना वह अच्छी तरह करना। करते करते ही रसबोध होता है।

सत् अनुष्ठान सत् क्रिया करनी चाहिए- क्रिया के स्वरूप-प्रकाश के लिए, जो प्रकाश अप्रकाश का नाश करता है। शरीर की बहिर्मुखी क्रिया की गति को अन्तर्मुख करने की कोशिश करना, भगवत् क्रिया में शरीर को प्रतिष्ठित रखने की चेष्टा सर्वक्षण मन की दुर्गति- अर्थात् जो भावना चिन्ता की गति भगवान् को दूर रखती है। अभाव की ताड़ना से मुक्त होकर स्वभाव में प्रतिष्ठित होने की चेष्टा मनुष्य का करणीय है।

कर्म योगायोग में मनुष्य का भोग रहता है। कर्मभोग और कर्मयोग। मुक्ति पाने के लिए भगवत् स्मरण, जप, ध्यान, चिन्तन में मन को सर्वदा डुबोकर रखना- जो शान्ति की दिशा है।

सत् इच्छा का जागरण जहाँ होता है, पूर्ण भी वहीं भगवान् करते हैं। सत् इच्छा सर्वदा जगी रहे- तभी मंगल कल्याण है। सत् क्रिया इच्छा अनिच्छा से करने पर भी फल होता है। सद्नुष्ठान, सत् कर्मादि में सौभाग्य खुलता है; दुर्भाग्य दूर होता रहता है।

संसार यात्रा। विश्व जगत् में जो आता है अपने कर्तव्य ज्ञान में यथाशक्ति त्रुटिहीन कर जाता है। भगवत् चिन्ता में भगवान् के नाम में अपने आप शक्ति प्रकाश करना अपना स्वभाव है।

### कृपा

भगवान् कृपामय करुणामय हैं- उनकी अहैतुकी करुणा, कृपा की वर्षा सर्वक्षण होती है। उन्मुख हाथ बढ़ाकर रखना। दुकानदारी की ओर नहीं जाना चाहिए। करके देखा अपने कृत कर्मा का फल पाया नहीं; ठाकुर मुझे मिल रहा है, तुम मुझे दे रहे हो, कृपावर्षण कर रहे हो- इस बात को याद रखना। तभी जीव के कल्याण की आशा है।

भगवान् की करुणा सर्वदा सर्वत्र वर्षित हो रही है। अपने को उधर उन्मुख रखने से ही उनका प्रकाश पाया जाता है। भगवान् की कृपा प्राप्ति के लिए हर समय प्रार्थना करना मनुष्य का ही कर्तव्य है।

कृपा-अनुभव का अधिकारी न होने तक कृपा की बात समझी नहीं जाती।

उनके लिए अभाव जाग्रति भी उनकी ही कृपा है, याद रखना। जब तक क्रिया का फल दिखाई न पड़े तब तक ठीक ठीक क्रिया अभी हुई नहीं- परन्तु अग्रसर की ओर यात्री की यात्रा चल रही है। इस जगह किन्तु अटल दृढ़ विश्वास रखना पड़ेगा।

बोध में जो नहीं आ रहा है यह भी भगवत् कृपा है, यह जो आकांक्षा है यह भी भगवत् कृपा है। शुभ सत् आकांक्षा में आकांक्षा-निवृत्ति की दिशा है, सत् शुभ बुद्धि एवं सत् क्रिया में नित्य व्रती रहने से उसके फलस्वरूप जिस किसी मुहूर्त में उसका प्रकाश होता है मनुष्य का तो वह जाना नहीं है।

इसीलिए जितनी देर प्रकाश नहीं होता, इच्छा-अनिच्छा से परम पथ की यात्रा में ब्रती रहना।

जब तक अहंबुद्धि है तब तक भगवान् की कृपा भी कर्मफलानुयायी है। जब तक कर्म तब तब कृपा।

दयालु ठाकुर ने अपने राज्य में दया की व्यवस्था तो करके ही रखी है। वे तो डाल ही रहे हैं, वर्षाधारा की भाँति दे रहे हैं पात्र सीधा रखने से वह भर जाता है, उल्टा रखने से पानी बह जाता है, फँसा ही रहता है।

कृपा तो वे सर्वदा ही कर रहे हैं। केवल समझने का अधिकारी होने के लिए उन्हीं की ओर लक्ष्य रख कर बैठना चाहिए। चित्त-शुद्धि होने से कृपा समझी जाती है।

आवरण नष्ट करने के लिए कर्म का प्रयोजन है। तुमको जो बुद्धि दी है उसी से तुम काम करते हो। उनकी कृपा अहैतुकी है। क्या कृपा नहीं कर रहे हैं यह उनकी मौज-अपना ही तो जो इच्छा करते हैं। जब हेतु रहता है तब प्राप्ति की इच्छा फल भोग मैंने किया इसीलिए फल भोग रहा हूँ। किसका फल? अपनी क्रिया-अपना फल।

कर्मफल में जो स्याही लगाते हैं, वे ही सत्कर्म में धो लेते हैं। उनकी करुणा कृपा सबम देखना। उनके हाथ का यन्त्र-सर्वक्षण यह भाव जिसके बोध (ज्ञान) में रहता है, उसके द्वारा कभी भी क्लेशदायक क्रिया नहीं हो सकती। उसका -सत्य, सरल गति होती है।

भगवान् के आश्रय में ही दुःख दूर होता है। मनुष्य के कर्मफल में जो कष्ट-भोग हैं वह भगवान् की ही कृपा है। कृपा मानकर ग्रहण कर सकने से ही कल्याण की दिशा प्राप्त होती है।



## गुरु

गुरुत्व बड़ा ही गम्भीर है। गुरु पर ईश्वर बुद्धि रखनी चाहिए। गुरु का कभी भी त्याग नहीं होता। गुरु का जहाँ त्याग होता है वहाँ गुरुकरण ही नहीं हुआ। गुरु द्वारा अशोभन या अन्याय काम कभी भी नहीं होता। जन्म जन्मान्तर के गुरु जहाँ कहा जाता है वहाँ गुरुशक्ति और गुरु भक्ति शिथिल नहीं होती। जो सत्यस्वरूप भगवान् हैं, वे सत्यानुसन्धान लक्ष्य पूर्ति की व्यवस्था करते हैं।

तुम्हारे गुरु जो हैं जगत् के गुरु वे ही हैं । जगत् के गुरु जो, तुम्हारे गुरु भी वे ही हैं। जहाँ जाने पर अपने गुरु पर अश्रद्धा उत्पन्न होती हो वहाँ जाना ही नहीं चाहिए।

जान कर रखो- गुरु कहने से एकमात्र स्वयं एक ही।

गुरु भीतर से ही होते हैं। असली खोज होने से ही प्रकाश। बिना प्रकाश के रहा ही नहीं जाता। वे स्वयं गुरु रूप में आकर स्वयं ही प्रकाश कर देते हैं या प्रकाशित हो जाते हैं।

भगवत् प्राप्ति का रास्ता सरल सहज है। गुरु जो कहते हैं वही श्रेष्ठ मन्त्र है। ठीक ठीक गुरु-मन्त्र जपने से प्रकाश न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। गुरु शक्ति प्रकाश होने से फल नहीं होगा? आग में प्रवेश करने से जलेगा नहीं सर्वनाम सर्वरूप फिर भी अनाम अरूप। यदि नाम अच्छा लगे तब सर्वनाम सर्वरूप में तो है ही। और यदि निराकार अच्छा लगे तो अनामी अरूप हैं।

स्वयं भगवान ही गुरु रूप में प्रकाशित होते हैं। विश्वास करो, उन्हें बुलाओ।

गुरु यदि कहो, तब जैसे विग्रह में शिला बुद्धि नहीं रखते, गुरु में मनुष्य बुद्धि मत रखना। गुरु में ईश्वर बुद्धि रखनी पड़ेगी। कारण मनुष्य क्या कभी गुरु हो सकता है? गुरु अर्थात् जगद्गुरु, जगद्गुरु अर्थात् मृत्यु की ओर से जो अमृतत्व की

ओर गति देते हैं, वे ही अन्तर गुरु हैं। यदि एक बार गुरु आश्रय द तो जब तक शिष्य का लक्ष्य पूर्ण नहीं होगा, तब तक गुरु जाते नहीं हैं। गुरु जाते नहीं हैं यह प्रश्न भी नहीं उठता। वे जायगे कहाँ? उनका क्या आने जाने का कोई प्रश्न है? समझे नहीं। इसीलिए गुरु जहाँ कहगे, वहाँ देह का प्रश्न ही नहीं; कारण वहाँ देह रह ही नहीं सकता। और एक बात है, गुरु के चले जाने पर भी, तुम यदि देह में उनको न भी देखो तो भी सर्वदा सर्वक्षण- जब तक तुम्हारा लक्ष्य पूर्ण नहीं होगा, तब तक तुम्हारा जो प्रयोजन है वह रास्ता वे तुमको पकड़ा ही दगे। दगे अर्थात् क्या? वे जायगे कहाँ? जाने का प्रश्न ही नहीं, प्रकाशित हागे।

तुम्हारा मैं जहाँ, वहाँ गुरु कहाँ? मेरा तेरा का द्वन्द्व वहाँ मिट जाता है। गुरु ही कहो और इष्ट ही कहो- इष्ट में गुरु, गुरु में इष्ट हैं। मन्त्र में भी इष्ट हैं- सब में वे समभाव से हैं।

गुरुकरण यदि ठीक ठीक हो तब गुरु का कभी भी त्याग नहीं होता। हर समय शिष्य के पास गुरु वर्तमान रहते हैं। भगवान् ही मनुष्य के गुरु हैं। उनपर ही निर्भर रहना। क्रिया योगाभ्यास इत्यादि गुरु सान्निध्य बिना होता नहीं। परन्तु ध्यान, जप, जहाँ तहाँ होता है मन शान्त होने के लिए अटल ध्यान, स्थिर आसन में बैठने की कोशिश करना, मन को परमार्थ लक्ष्य में रखने की कोशिश करनी चाहिए। तभी शान्ति की आशा, खुलने की दिशा।

प्रोफेसर न होने से जैसे विश्वविद्यालय का विद्यालाभ नहीं होता, वैसे ही गुरु न होने से ब्रह्मविद्या की प्राप्ति नहीं होती। आध्यात्मिक उन्नति, मुक्ति जो कुछ भी है, सबकी यही मात्र समस्या है।

गुरु का अनन्त रूप, अनन्त प्रकाश, अनन्त अप्रकाश। गुरु-इष्ट-मन्त्र रूप में वही तो है। जहाँ मन प्राण

वहाँ विश्वव्यापक एक आत्मा ही तो है, अपने को लेकर अपने में ही आप। उस स्वरूप-प्रकाश के लिए ही तो इस धरा में नाना धाराएँ, पुनः धरा स्वयं को स्वयं ही धारण किए हुए है। पर धारण-अधारण का प्रश्न ही नहीं। वह प्रकाश ही तो चाहिए।

उपर्युक्त गुरु के न होने पर गुरुतर हानि होती है, यह बिल्कुल ही सच बात है।

बहुत लोग दुःख करते हैं- सद्गुरु से दीक्षा ली, कहाँ कुछ तो हुआ नहीं। कपड़े में स्याही का दाग लगने से उसे छुड़ाने में कितना समय लगता है, और मन का इतना गाढ़ा मैल दो पाँच दिन में ही हट जायेगा? गुरु के उपदेश पर अटल विश्वास और श्रद्धा रखकर निष्ठा सहित उपासना आदि में मनोनिवेश करने पर वह फल देगा ही देगा।

जहाँ गुरु-मन्त्र है, वहाँ गुरु स्वयं हैं। देहत्याग देख सकते हो; परन्तु गुरु त्याग नहीं होता। जिसके लिए प्राणा का इतना रुदन; उनका उपदेश आदेश लेकर चलने के पथ में इतनी बाधा क्या आती हैं? गुरु तो एक ही है।

गुरु के निर्देश में चलना ही आत्मोपलब्धि का उपाय है। भगवत् प्राप्ति की इच्छा में कुण्डलिनी जागरण इत्यादि की क्रियादि होती हैं। वे जवाब नहीं देते, ऐसा हो ही नहीं सकता। भगवान् को वास्तव में चाहने से ही वे प्रकाशित नहीं हागे, ऐसा क्या कभी भी होता है?

अन्तर गुरु के सन्धान के लिए गुरुकरण। एकनिष्ठ होकर पथ पर चलना चाहिए। भगवत् विषयक सभी स्थान ग्रहणीय हैं। एक लक्ष्य होकर जो चलता है उसे पथ मिलता है। स्वयं ही पकड़ में आते हैं।

बिना विचारे गुरु-आदेश-पालन करना ही सबसे बड़ी सेवा-तुम जहाँ हो उसी स्थिति से ही। कभी कभी गुरु स्वयं ही

आदेश-पालन की व्यवस्था कर देते हैं। चेष्टा करने से आदेश-पालन की शक्ति प्रकट होती है। आदेश के ऊपर पूर्ण रूप से निष्ठा रहनी चाहिए।

ठीक ठीक गुरु शिष्य जहाँ हैं वही नित्य सम्बन्ध है। शक्तिशाली गुरु जहाँ हैं वहाँ क्षणिक अविश्वास आने से भी अन्तर्निहित गुरुशक्ति-उसे विश्वास की ओर खींचकर ले जाने की सम्भावना है।

जो वास्तव में गुरु को श्रद्धा करता है वह किसी से घृणा नहीं कर सकता, तब गुरु को ही घृणा की जाती है। कारण गुरु जो महान् हैं वे सबके भीतर हैं-यह विश्वास रहना जरूरी है।

गुरु जिसको जो निर्देश देते हैं उसे बिना विचारे ग्रहण करना चाहिए। नित्य सद् ग्रन्थादि पढ़ना और सत्संग में रहना, सत्य स्वरूप भगवान् के प्रकाश के लिए, स्थिर भाव मन शून्य रखकर बैठना, योगयुक्त जो है, वह तो वही प्रकाश के लिए।

दीक्षा का प्रयोजन है या नहीं,, इसके उत्तर में मां कहती हैं- दीक्षा का प्रयोजन होने पर समयानुसार हो जाता है। भगवत् चिन्ता में रहने की चेष्टा करना। जो प्रयोजन वे समयानुसार करते हैं यह विश्वास रखना।

इस कण्टकाकीर्ण पथ में गुरु सर्वदा ही हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींच रहे हैं-यही सत्य है याद रखना। कभी मरीचिका का प्रकाश प्रतीत होना स्वाभाविक है। परन्तु वे ही सर्वरूप में हैं। जिस गति में सर्वबाधाहीन रूप का प्रकाश होता है, उसी गति में स्थिर भाव से प्रतिष्ठित रहने की चेष्टा, सर्वक्षण यथाशक्ति करना।

गुरु चाहने के रूप में जो, प्रकाश पाने के रूप में भी वे ही। परन्तु सच्ची याचना होना प्रयोजनीय है सर्वक्षण उनका स्मरण उनकी अनुभूति के लिए करना।

प्रकाश के यात्री की यात्रा सफल होने के लिए गुरु-उपदेश पालनीय है परन्तु जहाँ गुरु-उपदेश नहीं है वहाँ जैसा प्राण चाहे वैसा ही पुकारना। प्रार्थना, ध्यान में अपने को ब्रती रखना।

गुरु-मन्त्र के जप ध्यान में सर्वक्षण ब्रती रहने की चेष्टा करना जो हाथ पकड़ते हैं वे छोड़ते नहीं हैं। उन्हीं का चरण-स्मरण सर्वक्षण करना। उन्हीं की सन्तान हो ठीक चाह होने से वे कभी लौटाते नहीं हैं।

स्वयं शिष्य होने की कोशिश करो तभी गुरु मिलगे, कृपा पाने की दिशा खुलेगी, करुणा-धारा का संधान मिलेगा। प्रार्थी होने से चीज पाने की संभावना है। प्रार्थी तो हो।

गुरु कृपा का जहाँ अनुभव है- वहाँ और क्या चाहिए? गुरु-कृपा ही अपनी इच्छा पूर्ण करती है। गुरु का उपदेश ठीक-ठीक पालन करना।

जिस तरह हो गुरु की कृपा प्रयोजन। जितने दिन गुरु लाभ नहीं होता, मनुष्य मात्र का कर्तव्य-सर्वरूप उनका रूप, सर्वनाम उनका नाम, सर्वभाव उनका भाव, उसी भाव से उनको पुकारना और उनको पाने की चेष्टा करना।

ठीक भक्त जहाँ सद्गुरु का साक्षात् होना ही। जब गुरु प्रयोजन तब गुरु का साक्षात् होना स्वाभाविक है। जब तक गुरुकरण नहीं होता तब तक कर्तव्य है- सद्ग्रन्थ पाठ, जप, ध्यान, कीर्तन- जिसको जो नाम अच्छा लगे। भक्त की स्थिति में आने के लिए सत् क्रिया में ब्रती रहना।

जो परमार्थ-लाभ की यात्रा में है उसे डर किसका? जिनके लक्ष्य में यात्री; वे सर्व समर्थ हैं। वे प्रकाशित होने के लिए बाध्य हैं। पर सच्ची चाह होनी चाहिए। चाह के रूप में यदि वे आय तो पाने के रूप में भी वे ही प्रकाशित होते हैं।

गुरु जिसको जो आदर्श लक्ष्य के लिए दे देते हैं, उस प्रकार की क्रियादि में एकलक्ष्य होने के लिए। शिष्य जब एकनिष्ठ हाकर एक लक्ष्य में चलता रहता है वहाँ आदर्श लक्ष्य कहाँ नहीं रहता? गुरु के आदेश पर लक्ष्य रखकर पूर्णता के लिए जो चलना है वही निष्ठा कहलाती है।

सदुपदेश, शास्त्र उपदेश जहाँ जितना लेखन रूप में अनुभव रूप में, ग्रन्थरूप में ग्रन्थि-भेदन के लिए प्रकाश-उसे ही गुरु-ग्रन्थ कहा जाता है। वहाँ गुरु ही ग्रन्थरूप में प्रकाशित हैं।

जिस अक्षर से मन का त्राण होता है वही मन्त्र है। अक्षर चिन्मय--शब्द ब्रह्म, नाम ब्रह्म। नामरूप में उनको पाया जाता है। यह भावना रखनी ही पड़ेगी। मेरे अन्दर जो बीज है उससे वृक्ष होगा ही, यह विश्वास रखना। पुनः बीज बोने से जैसे जल और सार देना पड़ता है, उसी प्रकार सत्संग रूपी जल और सार देकर मन्त्र रूपी बीज को अंकुरित करना पड़ता है। जैसा चाहा जाता है वैसा ही पाया जाता है।

### जप ध्यान

जिसका ध्यान करने से भगवत् बुद्धि होती है, वही करना कर्तव्य है।

गायत्री उच्चारण आहुति इत्यादि जप ध्यान अनुकूल क्रिया में अपना जन्म जन्मान्तर तथा उपस्थित मलिन भाव, कर्मादि जिसका जो संचित है वह धो पाछकर वही प्रज्वलित सतेज स्वरूप प्रदीप की भाँति अपने में आप जो अन्तर्निहित है उसका निवारण उद्घाटन ही जो लक्ष्य है उसकी सेवा करनी चाहिए।

अचिन्ता ही परम ध्यान।

भोजन जैसे दो तीन बार समयानुसार करना त्रिसन्ध्या भी वैसे ही शुद्ध वस्त्र पहनकर थोड़ा पवित्र भाव से यथाशक्ति निष्ठा के साथ एक आसन में बैठ कर करना शास्त्रीय नियम है। उससे

भीतर की जो नित्य शुचि है उसका जागरण होता है। तब और शुचि अशुचि का प्रश्न नहीं रहता।

संख्या जप ही केवल जप समर्पण की विधि है। मूलबीज सब समय याद रखना, जप करना ही। इससे जप समर्पण की आवश्यकता नहीं होती। बासी मुँह बासी कपड़े में जब इच्छा, जप करने की विधि तो है ही। अधिक जप इसी प्रकार किया जा सकता है। भगवान् अन्तर्यामी हैं, अन्तर में उनको पुकारने से ही हुआ।

सब कामा म, कीर्तन में माँ तुम्हारे पास हैं। चुपचाप शान्त भाव से बैठना, सोचना-शून्य में मेरे पास माँ हैं, इसम आनन्द पाओगे। अनङ्गभाव से सोकर ध्यान करना। सोचना माँ मेरे पास ही सर्वक्षण हैं।

निज इष्ट कहकर जिसको जानना--मन-मन में जप, स्मरण, इष्ट-ध्यान--चरण से केशाग्र पर्यन्त। यदि जप में अधिक समय रहने की इच्छा हो, तब शब्द पर लक्ष्य रखकर जप करना। अक्षर रूप में भगवान्, शब्द रूप में भी भगवान्।

जब तक उनका अनुभव नहीं होता तब तक उनकी क्रिया छोड़नी नहीं, इसे याद रखना। जप म, ध्यान में उनको पाया जाता है। जिस प्रकार जप ध्यान कर रहे हो वह जैसे सर्वक्षण ही ऐसी चेष्टा करना, उनको पुकारने पर वे जवाब नहीं दगे यह हो नहीं सकता। देरी होती है--निज कर्म में तीव्र क्रिया जहाँ वहाँ प्रकाश के अनुकूल।

चिदानन्द आत्मस्वरूप ध्यान।

जप ध्यान में मन प्राण डालकर यथाशक्ति चेष्टा करना। सत्परिवेश में सत् क्रिया में शरीर मन जितना देर रखा जाय, रखना। यात्री की यात्रा पूर्ण होने के लिए तीव्र गति होना। मन लगे न लगे, जप ध्यान स्मरण करते ही जाना।

स्थिर आसन, स्थिर दृष्टि, जप आश्रय, तब ही रस की आश।

## दर्शन

आपने क्या भगवान् को देखा? इस प्रश्न के उत्तर में माँ ने कहा--‘वाह! सर्वदा ही दिखाई पड़ रहा है। देखो, कौन किसको देख रहा है? सब ही तो वही। भगवान् को छोड़कर तो कुछ भी नहीं है।’

आत्मदर्शन, प्रत्यक्षदर्शन अर्थात् क्या? द्रष्टा, दृश्य और दर्शन--यह तीन जहाँ एक। जहाँ क्रिया अक्रिया की बात नहीं इसीलिए आत्मस्थिति, आत्मदर्शन और यदि रूपदृष्टि से देखो तब सर्वत्र ही। जैसे कहते हैं ना--“यत्र यत्र नेत्र हरे तत्र तत्र कृष्ण स्फुरे।”(अर्थात् जहाँ जहाँ आँख जाती हैं वहाँ वहाँ कृष्ण दीखते हैं) कृष्ण छोड़ जो कुछ देखते हो वह असली दर्शन नहीं है, सर्वांगीण दर्शन ही इष्ट का प्रकाश है।

आत्मदर्शन होगा क्या? है ही तो, केवल आवरण नष्ट होना। नष्ट माने क्या? जो नाश होने का वही नाश होता है। आवरण नष्ट होने से जो उसका ही प्रकाश--जो नित्य है। स्वयं स्वरूप प्रकाश।

आनन्द रहने से ही उसके पीछे निरानन्द रहेगा ही। ब्रह्मानुभूति, आनन्द और निरानन्द के बाहर की एक अवस्था, जैसे भीगे घड़े को दूर से देखने से तुम तो पानी से भरा घड़ा समझते हो। क्या साधारणतः पानी से भरा घड़ा ही भीगा दिखता है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञ लोगों के हाव-भाव में आनन्द की तरह एक भाव का प्रकाश होता है पर वह आनन्द नहीं है। वह भाव क्या है, वह भाषा द्वारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता। वह देखना ही देखना है जिसको देखने से सदा के लिए देखने की इच्छा चली जाती है। वही सुनना ही सुनना है जिसे सुनने पर और सुनने की इच्छा नहीं होती। असली दर्शन



तो वह है जिस दर्शन के बाद दर्शन-अदर्शन-निदर्शन कोई प्रश्न उदय नहीं होता। सर्वत्र अनावरण अनाविल अविरोध दर्शन।

### दुःख सुख

भगवान् को छोड़, मन में और कुछ ग्रहण करने से ही दुःख है।

मनमानी लेकर ही सुख दुःख मनमानी के पार यदि जाना हो तब उनको मानो। यदि पार जाना चाहते हो तो केवल उनको चाहो।

किसका कष्ट? कौन कष्ट? किसको कौन देता है? कहाँ? अपने को लेकर आप। अपने दाँत से जब जीभ कटती है तो उसे कौन सोचता है? स्वयं ही अंग-अपने में ही आप स्वयं।

शरीर धारण जागतिक सुख दुःख के भोग के लिए है। दुःख और सुख के अतीत होने के लिए एकमात्र उनकी शरण में जाओ।

वे तो सर्वदुःखहारी हैं-सर्वदा ही उनको पुकारने की कोशिश करना, उनका ही ध्यान, उनके पास ही प्रार्थना; उनको प्राण देकर प्रणाम करना। वे मंगलमय, शान्तिमय, आनन्दमय प्राणा के प्राण, आत्मा हैं।

भगवान् जो करते हैं सभी मंगल के लिए। डाक्टर जैसे फोड़ा काटकर विषैली वस्तु निकालकर रोग दूर कर देते हैं-भगवान् भी दुःख देकर धो पाछकर गोद में खींच लेते हैं। भगवान् सारे दोष सुधार लेते हैं- कहते हैं, तुम लोग मुझे अपनी सारी मलिनता दे दो- उसके बदले में अमृतत्व ग्रहण करो। भक्त को वे कष्ट देते हैं, दुःख देते हैं। उनका आग्रह उनकी व्याकुलता बढ़ाने के लिए। उसका पुंजीभूत दुःख, आँखा का जल वे ही ग्रहण करते हैं।

भगवान् को न पाने तक दुःख नहीं जाता। उनको पाने के लिए केवल उनका जप, उनका ध्यान, उनकी पूजा, उनका नाम कीर्तन- इसे छोड़ और कल्याण का रास्ता नहीं है। सत्संग सद्ग्रन्थ पाठ भी इसी पथ के अनुकूल है। यह शरीर प्रायः ही एक बात कहता है। विषय अर्थात् विष होता है। विषय भोग में धीरे धीरे मृत्यु, Slow Poison-इसीलिए जितना अधिक समय उनको लेकर रह सके। उसकी चेष्टा करना।

त्रिताप से त्राण पाने के लिए अन्य ताप की सहायता लेनी पड़ती है। ताप से ही ताप को जीतना पड़ता है। इसे तपस्या कहते हैं। ताप सहन करने को यह शरीर तपस्या कहता है। संसार में तापभोग करने में जैसा कष्ट, पहले पहले भगवान् का नाम लेने में उसी प्रकार कष्ट बोध होता है। परन्तु यह कष्टबोध होने पर भी इस कष्ट से ही ताप से मुक्त हुआ जाता है। इसीलिए चेष्टा चाहिए, अभ्यास चाहिए, कर्म चाहिए। पशुपक्षिया में इस प्रकार कष्ट से मुक्त होकर चिर सुन्दर चिर आनन्दस्वरूप भगवान् को पाने का कोई आग्रह नहीं है। है केवल मनुष्य में ही।

### दोस्त

दोस्त कौन? जो इष्ट के प्रति मन कर देता है वही तो परमबन्धु। जो इष्ट से हटाकर मृत्यु की ओर गति कर देता है वह शत्रु है, मित्र नहीं। अपने को संशोधन की चेष्टा जो नहीं करता वह तो आत्मघाती है।

परमार्थ यात्री के लिए भगवान् ही एकमात्र दोस्त। तदनुकूल ही क्रिया जहाँ- वही सर्वस्व मान लेना। एक लक्ष्य न होने से पद पद पर बाधा आयेगी।

## धर्म

जो सब चाहते हैं वह पाने का सहायक कर्म ही धर्म है, इसीलिए यह स्वभाव का कर्म है और जो, अशान्ति दुःख लाता है, वही अभाव का कर्म--अधर्म है।

अपने को पाने का जो रास्ता है--जिसे छोड़ा नहीं जाता वही धर्म है। हरेक का ही प्रकाशित होने का पृथक-पृथक रास्ता है। जहाँ तुम हो वहीं से तुम चलो। एकमात्र वे ही तो। वे ही पकड़े हुए-छोड़ा तो नहीं। पुनः भगवत् प्रकाश को क्रिया को ही धर्म कहा जाता है, जो अक्रिया वही अधर्म है। धर्म तो एक ही है।

धर्म की ओर मन देना ही पड़ेगा। धर्म ही तो प्राणा का प्राण आत्मा है, जो नित्य सत्य पकड़े हुए हैं। वह स्वयं कौन? जानना ही होगा। धर्मशाला में वास विपत्ति विपथ का यात्री और कितने दिन रहना है? स्वपथ, स्वयात्रा का प्रयोजन है, प्रेय त्याग, श्रेय ग्रहण।

कर्म और धर्म जगत् में धैर्य ही प्रधान अवलम्बन।

सर्व धर्म की एक धारा, सब धारा ही एक, हम सब ही एक।

शुद्ध अनन्य भाव के जोर से सब ही सम्भव है।

याद रखना, धर्मपथ पर प्रच्छन्न अहंकार की छाया भी लक्ष्य को आच्छन्न कर देती है।

## नाम और नामी

नाम नामी अभिन्न हैं, स्वयं वे ही नामरूप म। अक्षर भगवान् का ही रूप है। नाम करने से ही चैतन्य होता है। जैसे बीज बोने से वृक्ष जन्मता है। जो नाम अच्छा लगता है वह नाम लेते लेते ही सर्वनाम उन्ही का नाम, सर्वरूप उनका रूप वह प्रकाश होता है, और वे अनामी अरूप हैं उसका भी धीरे धीरे प्रकाश होता है।

केवल नाम, मैं जानती हूँ नाम से ही सब होता है। जितना अधिक समय हो सके उनके लिए दो। नाम में अधिक समय न दे सको तो उनके प्रसंग की आलोचना करो अथवा संकीर्तन या सद्ग्रन्थादि का पाठ करो। जैसे भी हो अधिक समय उनकी ओर मन को रखने की कोशिश करो।

नाम करते करते चित्त-शुद्धि होती है, बाद में श्रद्धा भक्ति के उदय होने से भाव-शुद्धि होने से अनेक प्रकार की उच्च उच्च अवस्था का आभास प्राणा में जगता है, काम करता है।

भगवान् का नाम सर्वदा लेना। नाम से भक्ति, मुक्ति, शान्ति सब प्रकाशित हागी। दृढ़ विश्वास से श्रद्धा से भक्ति से मान छोड़कर नाम लेकर तो रहो। देखना तुम्हारे सब काम स्वतः होते जा रहे हैं। इस शरीर को साधना के खेल में इस प्रकार का हुआ था इसीलिए इतने जोर से बोलना आ रहा है। भगवान् की परीक्षा लेने के लिए कुछ फक कर न रखना। ऐसा होने पर कुछ पाने अथवा कुछ होने का प्रकाश नहीं है। उसम सर्वस्व समर्पण होना चाहिए तुम्हारा बोझा, विश्व का बोझा स्वयं विश्वम्भर वहन कर रहे हैं, याद रखना।

सब समय नाम में डूबे रहने की कोशिश करना। भगवान् के लिए भगवान् का नाम करना।-यह याद रखना।

युग युगान्तर के संचित कर्म, पाप-वासना भगवत् नाम से क्षय होती है। दीपक जलने से जैसे सहस्र वर्षों का अँधेरा

कमरा प्रकाशित होता है उसी प्रकार भगवत् नाम से कोटि जन्मा का अँधेरा मिटता है।

जब कोई काम पूर्ण भाव से होता है तब उस कर्म की तद्रूपता प्रकाशित होगी ही होगी। नाम में तन्मयता लाने से ही रूप-सागर में डूबा जा सकता है। नाम-नामी अभेद होने के कारण उस समय के लिए बहिर्जगत् का भाव लुप्त होता है और नाम की जो स्वप्रकाश शक्ति है वह अपने से ही प्रकाशित होती है।

बचपन में बच्चे लिखना पढ़ना नहीं चाहते क्योंकि लिखाई पढ़ाई से खेलकूद ही उन्हें अच्छा लगता है। बच्चा को लिखाई पढ़ाई सिखाने के लिए जैसे पहले पहले जबर्दस्ती करनी पड़ती है, उसी प्रकार नाम भी पहले पहले जबर्दस्ती से ही करना पड़ता है। अभ्यास चाहिए, देखते हो न बरतना पर मैल जमने से उसे साफ करने के लिए उसे मलना घिसना पड़ता है। एक बार घिसने से ही साफ नहीं होता। दियासलाई जलाने के लिए भी उसे घिसना पड़ता है कब जो वह दप से जल जायेगी वह कहा नहीं जा सकता, नाम करना भी उसी प्रकार है। अभ्यास करते करते कार्यसिद्धि होगी। अभ्यास-योग में युक्त होना।

दृढ़ विश्वास चाहिए, परन्तु उसी का बड़ा अभाव है। कर्म करके वासना समाप्त नहीं की जा सकती। एक के बाद एक।

### **प्रकाश**

जब तक एकमात्र वे ही सर्वभाव में सर्वरूप में अरूप में प्रकाश नहीं होते तब तक एकनिष्ठा का प्रयोजन है। एकनिष्ठ होना एकमात्र इष्ट ही-इस प्रकाश के लिए। सेवाज्ञान में सब म, सबके लिए क्रिया करना।

प्राण की आकांक्षा ठीक ठीक जब जाग्रत होती है तब प्रकाश होता है।

चौबीस घण्टे मन को भगवत् परिवेश में रखना पड़ता है। ऐसा होने पर प्रकाश की आशा, न जाने किस मुहूर्त में प्रकाशित हागे, ऐसा सोचकर सर्वदा अपने को जाग्रत रखना।

अन्तर्यामी भगवान् का प्रकाश होने के लिए अन्तर गुहावासी ही मनुष्य को होना चाहिए।।

उनका स्वरूप या स्वभाव प्रकाश नहीं किया जा सकता। कारण स्वभाव बोलने से ही अभाव आ जाता है। भाषा में उनको लाने से ही उनका खण्डित रूप प्रकाशित होता है। पर प्रकाश करने के लिए उनको सत् चित् आनन्द कहा जाता है। वे हैं इसीलिए सत्, वे ज्ञानस्वरूप हैं इसीलिए चित्। इस सत् का ज्ञान होने से ही आनन्द। सत्यवस्तु जानने से ही आनन्द की प्राप्ति होती है। इसीलिए सच्चिदानन्द। परन्तु स्वरूपतः वे आनन्द निरानन्द के ऊर्ध्व में हैं।

जिसको जो रूप अच्छा लगता है भगवान् उसी रूप में प्रकाशित होते हैं, जो देना है, देते हैं। समग्र क्रिया अक्रिया में अपने को उनके हाथ का यन्त्रवत् याद रखने की कोशिश करना। साधु जीवन अपने से ही प्रकाशित होता है जिस क्रिया म-वही क्रिया ही ग्रहणीय है। अनन्त वासना दिखाई पड़ती है। केवल भगवान् को पाने की वासना लेकर रहने से दूसरी वासना लोप होती है। जैसे पेड़ की डाली और पत्तिया पर ध्यान न देकर दिन प्रतिदिन पेड़ की जड़ में जल देने से देखा जाता है कि पेड़ के सारे पुराने पत्ते गिर कर नये पत्ते आते हैं। उसी प्रकार दूसरे किसी ओर लक्ष्य न रखकर केवल नाम करने से ही मनुष्य पूर्व संस्कार से मुक्त होकर नया जीवन-लाभ कर सकते हैं।

फूल में जैसे बीज खोलने से ही दिखाई पड़ता है, बीज में जैसे वृक्ष है इसी प्रकार तुम्हारे में भी वे ही है। साधन करके खेल सकने से ही- अर्थात् आवरण नष्ट कर सकने से ही वह जो स्वयंप्रकाश हैं उन्ह पाया जाता है। बीज में जैसे

सम्पूर्ण वृक्ष है, उसी प्रकार तुम्हारे में भी वे पूर्ण भाव से विराजित है।

एक मात्र वे ही हैं इसीलिए उनके प्रकाश के लिए उनका ही कहना-उनको ही तो। गति और स्थिति रूप में जो वे ही अक्षर रूप म-जिनका क्षरण नहीं होता। भाषा में और उस गहराई में भी वे ही तो। गति में सहज गति में भी, सर्वक्षण जहाँ अचल रहकर भी सचल हैं।

भगवान् को छोड़कर तुम कहाँ ? यह झलक किसी भी रूप में किसी प्रकार प्रकाशित होती ही है।

समस्त प्रकाश ही भगवान् की विभूति है। विभूति रूप में स्वयं ही। अद्वैत आत्मा-द्वैत रूप में कौन? वे ही तो। इस मार्ग में बिना कुछ अनुभव हुए कोई रह ही नहीं सकता है।

महायोग शक्ति सब में निहित है। जब तक वह महाप्रकाश नहीं होता तब तक वह अविराम अविरोध महादर्शन कहाँ!

जहाँ आत्मा वहाँ 'मैं' किस प्रकार रह सकता है? त्याग और आकर्षण साथ साथ ही। परिवर्तन रूप में अपरिवर्तन रूप में वे ही स्वयं हैं। अपने में आप, उसी के प्रकाश के लिए चलो। जो नहीं चलता वह आत्मघाती है। भगवत् चिन्ता का आवरण हटाने की कोशिश करो।

बुद्धि के त्याग में ही--स्व-प्रकाश।

## प्रार्थना-पूजा

प्रार्थना साधना का विशेष अंग है, प्रार्थना की शक्ति अमोघ है एवं प्रार्थना में जीव और जगत् के प्राण अवस्थित हैं। जब जो प्राण में आए उन्हें निवेदित करना, साथ ही सरल और व्याकुल होकर उनके प्रति शरणागति की प्रार्थना करना।

वही महाशक्ति सर्व घट म, मठ में पट म--स्वयं वे ही। केवल उनको ही पुकारना। सन्तान के व्याकुल क्रन्दन से महाशक्ति महामाया का आसन हिलता है। वे जैसे कठोर आघात करती हैं उसी प्रकार हृदय से लगाकर शान्त भी करती हैं।

सृष्टि, स्थिति लय जिससे, सर्वावस्था में उनका ही स्मरण, जितना सम्भव मन प्राण का आवेदन-निवेदन, प्रार्थना भगवान् के पास करो।

जिनको पाने से सब पाया जाता है, उनको पाने की चेष्टा करो। उनको ही पुकारो। तुम्हारे सब कष्ट की बात, आवेदन-निवेदन जो कुछ, प्राण खोलकर उन्ही से कहो। वे पूर्ण हैं न, सब ओर से पूर्ण करते हैं। वे सर्व दुःखहारी हैं। सर्वदा ही उनके चरणों में मन को रखना। उनका ही ध्यान एवं उनसे ही प्रार्थना करो। उनको प्राण देकर प्रणाम करो। वे मंगलमय, आनन्दमय, शान्तिमय, और क्या नहीं हैं? वे प्राणा के प्राण आत्मा हैं।

भगवान् को बुलाओगे और फल नहीं मिलेगा, यह हो ही नहीं सकता। उनकी सन्तान वे धो पाछ लेते हैं तो। उनको मन प्राण से पुकारना। यथाशक्ति सर्वशक्ति से उनको लेकर रहने की चेष्टा करना। उनके चाणों में अपने को लगाना। वे अपनी क्रिया स्वयं देते हैं। क्रियातीत करने का यात्री तैयार करते हैं। इसीलिए यथाशक्ति जिधर चिन्ता करने से मन प्राण दे दिया जा सकता है-वैसी चिन्ता लेकर मन प्राण दे देने की चेष्टा करो-समय चला जा रहा है।



शिशु जैसे थप्पड़ खाकर भी माँ को तंग करते हैं लेने की कोशिश नहीं छोड़ते-भक्त सन्तान के रूप में इस रूप का ही प्रकाश; बार-बार की गई प्रार्थना, किसी भी मुहूर्त में फलवती रूप धारण करती है।

प्रणाम से अहंकार घटता है।

जो जितना आत्मविस्मृत होकर एक निष्ठा के साथ प्रणाम कर सकता है वह उतनी शक्ति पाता है और आनन्द लाभ करता है। और यदि कुछ नहीं कर सको शाम सवेरे मन प्राण देकर एक कातर प्रणाम करना। पूर्ण घट उलटने के समान अपने हृदय, मन के सब भाव खाली करके नमस्य को समर्पण कर देना।

स्वमय - वे स्वयं मय होकर हैं-रहते हैं। उनको व्याकुल होकर ठीक-ठीक भाव से जब पुकारा जाता है तब वे प्रकाशित होते हैं। माँ जानती हैं पुत्र का असली रोदन, जिस रोदन को सुनकर माँ सारा काम छोड़कर दौड़ आती है।

व्याकुल भाव ही पूजा का प्राण है। अन्तर में ही महाशक्ति का प्रसन्नवण एवं सभी चेष्टाआ में सृष्टि, स्थिति और प्रलय का मूल विद्यमान है।

भगवत् पथ के यात्रिया को अपने अपने पूर्व कर्म के अनुसार अनेक समय अनेक बाधा विघ्न आते हैं। तब प्रार्थना करनी पड़ती है-“भगवान्। धैर्य, सह्य शक्ति दो। हे भगवान्। मैं तुम्हारे पथ की यात्रा में ब्रती रह सकूँ।” इस बाधा विघ्न से मेरा कर्मक्षय हो रहा है यह सोच कर मन प्रसन्न रखना। भगवान् अपने पास लगे सोचकर। धो पाछकर लेते हैं, याद रखना।

भगवान् का जो रूप अच्छा लगता है, उस रूप में किसी किसी को दर्शन देते हैं। तुमको भाव और शक्ति प्रदान की। मन्त्र अक्षर रूप अभी नहीं मिला। उपस्थित तुमको जो नाम जो

रूप अच्छा लगता है उसी को जप ध्यान मनन म; और प्रार्थना करो ठाकुर, मेरे लिए जो कल्याण उस रूप में मेरे पास प्रकाशित हो।

वे सर्वमय हैं न- सब जगह ही उनको पाया जाता है। प्राण से प्राणा के ठाकुर को पुकारना। सब पुकार उनके पास पहुँचती है।

परमार्थ पथ में आलस्य और लालसा यह दो महाविघ्न हैं- व्याकुल भाव ही पूजा अर्चना का प्राण है। सेवा मन्त्र जप ही गृहस्थ की साधना का उपाय है। मौन ही बड़ी तपस्या है। केवल सोचना वे जो करते हैं सभी मंगल के लिए करते हैं।

पूजा का उद्देश्य इष्ट का प्रकाश। जिसकी पूजा करने से द्वैत अद्वैत का प्रश्न नहीं आता उसकी पूजा करना। भगवान् के लिए पूजा निष्काम पूजा।

रूप, अरूप, रूपातीत, गुणातीत, अतीत का अतीत, जहाँ प्रश्न नहीं इसीलिए मनुष्य का चाहना।

निर्दिष्ट समय पर प्रार्थना- हे भगवान्! मेरे में प्रकाशित हो! मुझे अपना लो। मुझे रास्ता दिखाओ।

## भक्ति

नारद ने कहा है कि ईश्वर में जो परानुरक्ति है उसे ही उत्तम भक्ति कहा जाता है। केवल भगवान् को पाने की जो चेष्टा है उसे भजन कहते हैं।

जगत् में प्यार करने का कोई प्रश्न नहीं है। भगवत् चिन्ता में भगवान् के ऊपर श्रद्धा, भक्ति, प्रेम आना ही स्वाभाविक है।

भगवान् को प्यार कर सकने से ही सब तरह के प्यार की सफलता है।

जहाँ रहा जाता है वहीं से भगवान् को स्मरण करना। सभी भगवान् का, यह स्मरण रखना। भगवत् प्रेम जागृत होने के लिए सर्वदा जप, ध्यान, सत्कथा में मन डुबोकर रखने की चेष्टा करना। भगवत् प्रेम जागृति के लिए उनकी आकांक्षा होनी चाहिए।

भगवत् प्रेम ही मनुष्य का वांछित है। जिससे उत्पन्न वे ही माता पिता, बन्धु, सखा, स्वामी सब कुछ उन्होंने जिनके भीतर से प्रकाश किया है। जिन्होंने स्तन्य सुधा से पुष्ट किया है, उनको तुम जो कह कर सम्बोधन करते हो, उस शब्द को मन प्राण में हर समय रखना।

### भय अभय

अभय की शरण लेना। संसार ही भय है। भय के आश्रय में रहोगे, भय नहीं होगा? वहाँ निर्भय आशा करना ही वृथा है। सर्व दुःख से रक्षा पाने के लिए, एकमात्र भगवान् का आश्रय ग्रहण की चेष्टा ही कर्तव्य है।

वे हैं। वे नहीं रहने से मैं कहाँ? वे ही मुझे छूकर हैं; इस भाव को लेते लेते देखोगे- वे ही। मैं यदि रहे-सेवक सेविका। तब और मैं दूर नहीं रहा। इस भाव के आने के लिए निरन्तर जप करना। जितना इष्ट मन में रखोगे-उतनी निष्ठा बढ़ेगी। चारा ओर मन न देकर एकाग्र होना। भय भावना क्या? वे मेरे पास नहीं हैं- इसी भाव के लिए तो। वे पकड़े हुए हैं भय क्या? अभय को पकड़े रहने से भय का प्रश्न कहाँ?

डर किसका? वे तो हैं सर्वक्षण- उनकी जो इच्छा कर। वह जो करते हैं सब ही मंगल-यह याद रखना।

वासना से ही -भय, दुःख।

## मन

मन के राज्य में शरीर एक बन्धन है। मन अन्तर्मुखी होना चाहने पर भी वह अपने राज्य का अधिकार छोड़ना चाहता है क्या? जहाँ वैषम्य, बार बार घूम फिर कर वहीं मन की गति। केवल स्मरण- तुम ही अन्तर, बाहर, अभाव म, इस रूप म, सर्वावस्था म। अनिष्ट नष्ट करने के लिए इष्ट स्मरण में मन रखना।

विषय में इतने दिन मन रख दिया। अभी भगवान् की ओर मन लगाओ। देखो धीरे धीरे तुम्हारा रास्ता खुल जायगा। विषय चिन्ता भी छूट जायगी, विषय चिन्ता तो छूट जाने की है ही। आवरण भी धीरे धीरे चला जायगा। अनित्य जो उसका विनाश होगा ही।

गाँठ बाँधना और गाँठ खोलना दोनों कामा में ही मन को लगाया जा सकता है। विषय चिन्ता करने से मन केवल गाँठ की ही सृष्टि करता है। भगवान् की चिन्ता में मन को लगाने से वह गाँठ खोलने की कोशिश करता है।

कर्म जगत् में बहुत तो हुआ। अभी केवल भगवान् की ओर मन देने की चेष्टा करो। अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिए। जो भगवत् चिन्ता और अपने को पाने की ओर नहीं जाते हैं वे आत्मघाती हैं। श्रेय ग्रहण, प्रेय त्याग।

इच्छा न होने पर भी भगवान् में मन को रखने की चेष्टा करनी चाहिए, भगवान्-लाभ ही लक्ष्य होना चाहिए। सङ्ग का संगी कोई नहीं-कुछ ही नहीं- केवल भगवान् की दिशा जो वही।

मन को भगवान् की ओर न रखने से चंचलता स्वाभाविक है। सारा दिन मन खाली मत रखना- जप ध्यान म, सद्ग्रन्थ पाठ में मन को इच्छा अनिच्छा से भगवान् के चरणा में डुबोकर रखने की कोशिश करना।

नाम में मन बैठता नहीं; मन इधर उधर जाता है इसलिए दुःख करके क्या लाभ? वरना तब यह विचार करना- मन मेरा आज्ञाकारी नहीं है। मैं भी मन का आज्ञाकारी नहीं हूँ; ठाकुर का नाम लेता ही रहूँगा। तुम लोग देखते हो न, लड़के आसमान में पतंग उड़ाते हैं। पतंग कितनी ऊँचाई पर चंचल भाव से उड़ती रहती है। परन्तु लट्टू के धागे के साथ बँधी रहती है। पतंग है मन और विषय है हवा। मन को भगवत् नाम रूपी धागे के साथ बँध रखना। एक न एक दिन वश में आयेगा ही।

मन को शुद्ध भोजन दो। उनकी ओर अधिक समय देने से भगवद् बुद्धि होने की आशा है। चित्त दर्पण निर्मल होने से भगवान् स्वयं प्रकाशित हागे। अन्तिम निश्वास में जो स्थिति, वर्तमान में उस स्थिति के अनुसार प्राप्ति होती है।

मन में विक्षेप की सृष्टि, चारा ओर के संग की बात एवं व्यवहार तथा नाना प्रकार के परिवेश के लिए होती है। अन्तर्मुखी जिनका मन नहीं है उनके साथ मेलजोल होने से ही यह विक्षेप है। समुद्र की तरंग में जैसे डुबकी लगाने से ही उठना पड़ता है उसी प्रकार की भावधारा लेना मनुष्य मात्र का ही कर्तव्य है। यह विक्षेप जिससे न हो, इसीलिए सात्त्विक भोजन, सद्भाव, सद्व्यवहार, सद्ग्रन्थ पढ़ने को कहा जाता है। जिससे सृष्ट उसी दिशाधारा में चलना। वहाँ से शक्ति आने से सब सम्भाल सकोगे।

भगवान् की कृपा के बिना इस पथ का यात्री होना कठिन है। पर यात्री होने के बाद डाँवाडोल मन- जो अकल्याण का पथ, वह रखना ठीक नहीं। मन मजबूत करके तपस्या के जीवन में चलना। परमपति इस पथ में भगवान् स्वयं।

सबके भीतर ही भगवान्-उसी को पकड़ने का अभ्यास, जप ध्यान। भगवान् में मन संयोग अभ्यास करना ही। मन को जिधर लगाया जाता है उस ओर ही वह मग्न होता है। इसीलिए मन

को यदि भगवान की ओर लगाने की चेष्टा हो, जो नित्ययुक्त है, उसका स्पर्श पाने की दिशा को लक्ष्य करके ऐसा होने से ही उनका स्पर्श पाने की आशा है।

जिसकी दर्शनाकांक्षा से इस सुदीर्घ पथ पर चलना है, उनकी ही तो कृपा से। केवल धैर्य का आश्रय ग्रहणीय है, निराश नहीं होना चाहिए। जहाँ तहाँ जैसे तैसे केवल उनकी ओर मन को रखना ।

सत्यानुसंधानी की वासना भगवान् पूर्ण करते हैं। जिस प्रकार माँगा जाता है उसी प्रकार प्रकाशित होकर वे जो करने का है करते हैं। मन की वासना वे ही जाग्रत करते हैं, पूर्ण भी वे ही करते हैं। मनुष्य का कर्तव्य है प्राणमय होकर भगवान् का स्मरण, जप, ध्यान, नित्यकर्म में नियमित मन को रखना। साधना के पथ में मन में ग्लानि उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। जितना मन साफ रखोगे उतना ही वह उस पथ पर अग्रसर होने में सहायक होगा। मन में क्रोध आने से उसे दूर करने की चेष्टा करना।

चंचलता जैसे मन का स्वभाव है वैसे ही शान्त होना भी उसका धर्म है। मन शान्त करने करने के लिए एक आश्रय लेना पड़ता है। तुम लोग नौकरी के लिए एक एक स्थान पर एक एक जन का आश्रय लेते हो। इसी तरह मुक्ति के लिए नाम का आश्रय ग्रहण करना।

उनके चरण छोड़ कर मन को अन्यत्र मत रखना, ऐसा होने से ही सब तरफ के प्रलोभन से बचने की आशा है। मनुष्य का कर्तव्य है मनुष्यत्व का जागरण, पशुभाव का त्याग। श्रेय ग्रहण, प्रेय त्याग। मन को सुन्दर फूल की भाँति रखना जिससे भगवान् की पूजा में लगे। यथार्थ ही मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य है—स्वरूप प्रकाश की दिशा ढूँढ़ना।

चंचल को शान्त करने के लिए एक लक्ष्य का ही एकमात्र प्रयोजन। सद्भाव का स्वरूप जो सत् संग है, उसका जितना ही

संग होगा उतनी ही मनोवांछा पूर्ण होकर शान्त रूप धारण करेगा।

जो चिन्ता मनुष्य को विक्षिप्त करती है और भगवान् से दूर रखती है वही दुश्चिन्ता है। दुश्चिन्ता मन में स्थान न पावे वही कोशिश करना। तुम्हारा सारा भार भगवान् के ऊपर है—इस विश्वास को लेकर सरलता और मन की स्फूर्ति में रहने की कोशिश करना।

मौनी होओ तो मन प्राण को एक साथ करके एक चिन्ता में घनीभूत करके भीतर बाहर पत्थर की तरह हो जाओ।

जब सिनेमा देखते हो या बाहर के भोग में मन आकृष्ट रहता तब निद्रा नहीं आती है। संसार में जो परिश्रम होता है निद्रा में उसका विश्राम होता है। निद्रा में जीव अपने स्वरूप में जाता है, अज्ञान आवरण में। जहाँ निरावरण स्वरूप प्रकाश वहाँ निद्रा का प्रश्न नहीं—इस निरावरण स्वरूप स्थिति में क्रिया और गति जितनी अधिक होगी निद्रा का प्रयोजन उतना ही कम हो जायगा।

## माँ

मैं आगे भी जैसी अभी भी वैसी और बाद में भी वही। तुम लोग जब जो जो कुछ कहते हो जो कुछ सोचते हो, मैं वही—। शरीर का जन्म प्रारब्ध भोग के लिए नहीं हुआ। क्या नहीं सोचते यह शरीर भाव की गुड़िया है, तुम लोगो ने माँगा था इसीलिए पाया।

यह शरीर तो हर समय कहता है, एक आत्मा। इसीलिए दूरत्व का प्रश्न कहाँ?

माँ को जानना अर्थात् माँ को पाना और माँ हो जाना। माँ माने आत्मा—मा माने मय। स्वमय—आत्मसत्ता—वही—--तो।

ज्ञानस्वरूप, आत्मस्वरूप, शिवस्वरूप हो जाना, अर्थात् -है ही तो।

इस शरीर की आत्मा सभी की आत्मा-माँ का किसी के न होने से चलता नहीं।

माँ अर्थात् जो सन्तान को परिमित दे सकती है। सन्तान को माप सकती है, इसीलिए माँ।

माँ से ही तुम्हारी सृष्टि। माँ में ही पिता है। भगवान् को बोलते हो तो, तुम माता, तुम ही पिता, तुम बन्धु, सखा, स्वामी-अर्थात् स्व में ही। सब में सब वे ही-वही माँ याद रखना।

माँ को बहुत लोग कहते हैं-“आप मेरे गुरु हैं।” माँ का जवाब-तुम जो जैसा कहते हो वही। विश्वव्यापक परमात्मा भगवान् जिसे कहा जाता है वही तो सबकी माँ।

अपने को जानने की कोशिश करने से ही माँ को पाया जाता है।

चिदानन्द माँ छोड़ मन में और कुछ नहीं रखना।

माँ के साथ जो नित्य सम्बन्ध-चिरपरिचित एक आत्मा ही तो।

माँ को छोड़ने पकड़ने का प्रश्न नहीं है। माँ को छोड़ने में भी पकड़ना पकड़ने में भी छोड़ना। सर्वक्षण ही माँ भाव में हैं, अभाव में हैं-रहती हैं रहगी भी।

इस शरीर की तो गति यही है। जब जिस विषय को कहेगा तब उसी दृष्टि से उस विषय को कहता जा रहा है। तुम लोगों की तरह सामंजस्य (समानता) रखकर हर समय बात कही नहीं



जाती। सभी के सभी भाव तो हर समय आँखा के सामने रहते हैं।

तुम लागा के काम के लिए इस शरीर को तुम्हीं लोग ले आए हो।

सब कुछ बिल्कुल सजाया हुआ। इस शरीर से ही सब प्रकाश किन्तु। देव देवी की मूर्तिया को भी इस शरीर से निकालकर ही बिठा कर पूजा हुई। पुनः पूजा समाप्त होने पर इस शरीर के भीतर ही सब जहाँ वहीं। सब सम्भव जानना।

यह जैसे तुम लोगों के साथ बात कर रही हूँ, हँस रही हूँ, लेटी हूँ, यह भी जैसे है पुनः कभी कभी जो देखते थे कीर्तन में यह शरीर लोट पोट हो रहा है, कितना कुछ शरीर में प्रकाशित हो रहा है, वह भी किन्तु ठीक यही एक ही अवस्था। सब ही सब भाव से हो जा रहा है। पुनः जब पूजा इत्यादि होती थी तब जिस देवता या जिस देवी की पूजा हो रही है एक दम ठीक उसी देव देवी का भाव, आसन, मुद्रा, शक्ति इत्यादि सब कुछ इस शरीर में उसी प्रकार हो जाते थे। काल्पनिक रूप से नहीं। तुम लोग जैसे प्रत्यक्ष देखते हो ठीक वैसे ही।

इस शरीर के पास तो आना जाना नहीं है। तब भी जो अब भी वही। मरना जीना क्या है? मरकर भी जो है ही-उसम और क्या बात हो सकती है?

यह शरीर अनेक समय अपने को गुप्त रखता है व्यवहार म, बातचीत म। यह हुई असली बात। इसी की शायद आवश्यकता है। इसीलिए हो रहा है।

आनन्दमयी माँ कौन हैं? आनन्दमय ही कौन है? वे घट म, पट म, सर्व हृदय में नित्य विराजित हैं। सर्वत्र ही उनका निवास है। उनको देखने से उनको पाने से सब देखा, सब पाया जाता है। अर्थात् निर्भय, निश्चय, निर्द्वन्द्व, अव्यय, अक्षय होना।

यह शरीर क्या कहता है जानते हो-वह किसी के घर नहीं जाता, किसी की चीज नहीं खाता, किसी के साथ बात नहीं करता, किसी की ओर नहीं देखता। किसी का, कौन इत्यादि का प्रश्न नहीं। इसका अर्थ जानते हो तो? वह हर समय ही माता, पिता, दोस्ता के पास है-मुक्त। वह आता भी नहीं, जाता भी नहीं। समझे तो?

स्वाभाविक अस्वाभाविक सब कुछ ही तुम लोगों की दृष्टि में। यहाँ कर्म या वासना की कोई बात ही नहीं। यहाँ तो केवल एक ही बात जो हो जाय।

साधक की स्थिति लक्ष्य में गति रहती है। परन्तु यहाँ तो स्थिति अस्थिति, लक्ष्य अलक्ष्य का कोई प्रश्न नहीं। जैसा कि प्रदीप हाथ में रहने पर अंधेरी कोठरी की एक एक चीज साफ दीखती है। ऐसा और क्या, पर साधक की गति में यह सब देखना संभव नहीं होता। उसको नाना प्रकार की बाधाओं का अतिक्रम करके चलना पड़ता है। एक हुई बाहर की गति एक है अन्तर्मुखी गति। यहाँ तो यह प्रश्न खड़ा नहीं होता। यहाँ नाड़ी भी मैं, हरेक नस भी मैं, गति भी मैं, द्रष्टा भी मैं, अवश्य मैं कहने से यदि एक शब्द व्यवहृत हो।

इस शरीर का तो कोई संकल्पादि नहीं है। इसीलिए दीक्षादि जो कुछ, वह दिशा नहीं है। पर यह शरीर अपने मन में है अचानक कितनी बार, बीज या संन्यास का मन्त्र मुँह से निकल रहे हैं। तब किसी ने वह सुन लिया। और दूसरे भाव से भी किसी को कुछ मिल गया। उसने वह पकड़ लिया। ऐसी अनेक घटनाएँ होती हैं जिससे साधारण मनुष्य यह सोच लेता है कि पहले से सब ठीक किया हुआ था। यह सब कुछ भी किन्तु नहीं है। जो होने का है वही होता जा रहा है। कैसे जानते हो? जैसे माटी तो है ही। पेड़ से एक फल गिरा उससे पेड़ निकला। किसी ने किन्तु बीज लगाया नहीं। बीज लगाने से भी जैसे पेड़ होता था अपने आप फल गिरने से भी वैसा ही पेड़ हुआ। उस पेड़ के फूल फल भी एक तरह के ही हागे। परन्तु

किसी का भी इस तरह का आग्रह या संकल्प नहीं है। ऐसा ही और क्या!

यह शरीर मन्त्र तन्त्र कुछ नहीं करता। तान्त्रिक यह सब क्रिया किसे कहते हैं, क्या करते हैं, इन सबकी कोई बात ही नहीं है। यहाँ तो सभी के साथ आत्मिक संबन्ध है। यहाँ तो अलग घर मकान नहीं है और घर यदि कहो तो वही सीमाहीन एक ही।

इस शरीर की तो भेद दृष्टि नहीं है, मनुष्य मनुष्य में सम्प्रदाय सम्प्रदाय मा। अनेक आश्रमा में कहा जाता है कि यहाँ का विधिनिषेध यदि न मान सको तो यहाँ से दूसरी जगह जाओ। इस शरीर के पास वह प्रश्न नहीं है। सभी यहाँ आते हैं सत्संग देने-हाँ सत्संग ही- सर्वरूप में वे ही तो भगवान। वृक्ष लता पशु पक्षी सभी को लेकर यह शरीर है, इस शरीर के पास अलग कहकर कुछ नहीं है।

तुम लोगों के लिए इस शरीर का जो कुछ चलना फिरना काम काज घूमना फिरना। तुम लोगों के लिए ही इस शरीर से जब जो होता है तुम लोग करा लेते हो।

इस शरीर के पास एक छोड़ तो दो नहीं है। कौन किसको कष्ट देगा? दूसरा कोई होने से तो कष्ट की बात आती है।

बाहर आदर नहीं दिखा कर भी जो असली माँ, वह असली माँ हैं भी रहगी भी। उनको हटाना चाहने से भी वह नहीं हटतीं।

यह जैसे मैं तुम दो जन। पुनः तुम एक ही। यह जो दो जन में शून्य है वह भी किन्तु मैं ही।

जो जहाँ भी उपस्थित क्या न रहे, यह शरीर हर समय उनके पास ही। इस शरीर को तो सबकी सेवा नहीं आती जब

जो हो जाय। जो जितना करा ले। अपना जन सोच कर यह शरीर आदर से संग देता है। यहाँ दरवाजा खुला है, निःसंकोच जब भी इच्छा होगी तब ही आना।

तुम लोगों का दुःख, तुम लोगों की व्यथा- तुम लोगों की ज्वाला तो मेरा ही दुःख। यह शरीर सब समझता है।

इस शरीर के पास किसी का कोई अपराध होता ही नहीं। इसलिए इस शरीर के पास क्षमा माँगने की कोई बात ही नहीं। पर तुम जो काम कर रहे हो उसका फल तो भोग करोगे ही। इस शरीर में इसलिए कोई क्रोध का नाम ही नहीं है।

जान कर रखो-तुम लोगों की बात मुझे हर समय याद रहती है।

इस शरीर को तुम लोग मन से हटाना चाह सकते हो। परन्तु यह शरीर किसी दिन हटा नहीं, हटता नहीं, हटेगा भी नहीं। जिसने इस शरीर को एक बार प्यार किया है वह हजार कोशिश करने पर भी इस शरीर की स्मृति भुला नहीं सकता। यह शरीर हर समय के लिए उसकी स्मृति में है -रहेगा भी।

वे लोग दूर सोचते हैं, पर यह शरीर तो पास ही। छोड़ने का उपाय कहाँ? उनकी दृष्टि में निकट और दूर है।

इस शरीर और मिट्टी में कोई फर्क नहीं है, मैं तो मिट्टी पर या किसी भी स्थान पर रख कर खा सकती हूँ; तुम लोगों की शिक्षा के लिए आचार निष्ठा, सफाई, कर्तव्य पालन इत्यादि आवश्यक हैं; इसीलिए मेरा ऐसा होता है।

इस शरीर का नहीं जाना हुआ या भूल कहकर कुछ नहीं है। सामने हो दूर हो। देखा नहीं देखा जो होने का हो ही जा रहा है।

माँ सब ओर अच्छे के लिए कहती हैं। परन्तु इच्छा न होने पर भी जबरदस्ती करके भी यदि करे तब उसकी शक्ति, फल वे दगी ही दगी और याद रखना कि क्रिया का फल और मन:संयोग का फल भी होता है। कुछ दिन करके कुछ फल नहीं हुआ-यह कहा नहीं जा सकता। वहाँ व्यापार नहीं चलता। अभ्यास में परिणत हो इसीलिए नित्ययुक्त होने की चेष्टा करना।

कभी-कभी-इस शरीर के ऊपर नाना रोग मूर्ति का लक्ष्य रहता है एवं तब इस शरीर के भीतर प्रवेश करके कुछ दिन खेल करके गये। इस शरीर का भाव किसी को बुलाना भी नहीं, भगाना भी नहीं। तुम सब जैसे हो रोग भी वैसे हैं। यह शरीर जब तुम लोगों को नहीं भगाता, तब उनको भी क्या भगायेगा?

कष्ट रूप में भी कौन? भोग लेकर लेना, यह दूसरी बात। सब क्रिया सब में संभव ही नहीं तो। यहाँ हँसी या खेल जो, और श्वास-बन्ध भी वही तत्। यहाँ भोग का भाग नहीं, कष्ट का भाग नहीं-सम।

किसी रोग की मूर्ति मैंने देखी। इस शरीर में वे जब आना चाहते हैं, मैं कोई बाधा नहीं देती। जब एक मैं ही तब त्याग या ग्रहण कहाँ? तुम लोगों को लेकर मेरा जैसा आनन्द, उनको लेकर भी वैसे ही-जानते हो!

तुम लोगों को छोड़ कर यह शरीर अलग कहाँ ? इस शरीर और इस दोस्त में क्या प्रभेद? दो ही ओतप्रोत होकर एक होकर हैं-इस बात को याद रखना। यदि तुम लोग कुछ खराब खाते हो तो जानना इस शरीर को कोई वह खाने के लिए दे रहे हो। पूछ रहे हो तुम लोगों की भावना क्या इस शरीर तक पहुँचती है? हाँ हाँ हाँ।

## मनुष्य

दूसरे प्राणिया से मनुष्य का पार्थक्य यही है कि मनुष्य में एक विशेष प्रकार की शक्ति है जिसके द्वारा वह पूर्णता प्राप्त कर सकता है। मनुष्य के लिए यह शरीर कहता है कि- जिसे मन का होश हुआ है वही मानुष। जिसे मन का होश नहीं है विषय वासना में तन्मय रहते हैं उसे क्या मनुष्य कह सकते हैं?

दुर्लभ मनुष्य जन्म मिला है। एक मुहूर्त व्यर्थ न जाय, वृक्षलता, पशुपक्षी भी कुछ दिन संसार में रहकर पुनः नयी वृक्षलता, पशुपक्षी की सृष्टि करके संसार से विदा लेते हैं। तुम लोग भी यदि वही करो तो और प्रभेद क्या हुआ? जिससे return ticket काटना न पड़े, उसकी कोशिश करना।

जन्म जन्मान्तर के सैकड़ा कर्म मनुष्य के अज्ञात अगम्य। मनुष्य जन्म भाग्य के जन्म की सफलता है। उनकी कृपा से ही मनुष्य जन्म, सुकृति के फल से ही यह जन्म। मनुष्य जन्म दुर्लभ है। इसीलिए मनुष्य जन्म में मनुष्यत्व जागृति की दिशा ग्रहण करनी चाहिए।

चौबीस घण्टे हैं साधन भजन के लिए। भगवान को पाने की इच्छा ही विशेष भाव से रहे यही कर्तव्य है। मनुष्य मात्र को ही मनुष्यत्व लाभ की इच्छा प्रमुख रूप से रखनी चाहिए। जितना संसार की सेवा में दिया जाता है बाकी समय भगवत् चिन्ता में रखना कर्तव्य है। जप, ध्यान, सद्ग्रन्थादि पाठ, पूजा, प्रार्थना, आत्मनिवेदन-इसीलिए उनको चाहना और रोना।

## यात्री यात्रा

सत्यलाभ यात्रिया के लिए थोड़ा नियम और आदर्श जीवन का होना प्रयोजनीय है। कोई यदि अपना वस्त्र अर्थ इत्यादि दान करने का इच्छुक हो तो उसको बता देना कि हम लोगों के लिए इस प्रकार ग्रहण करना निषिद्ध है, भगवान् के प्रेम की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

जब जिस प्रकार रहना, उसमें ही यथाशक्ति भगवान् को स्मरण करना, भगवान् की कृपा के लिए प्रार्थना करना। वास्तव में ही भगवत्-प्राप्ति जिसका लक्ष्य है उसकी तो यात्रा का प्रारम्भ है। यथाशक्ति नित्यकर्म करना।

यथार्थ में जो आलोक चाहता है, भगवान् उसको दिए बिना रह नहीं सकते। अपनी क्रिया यथाशक्ति नित्य करना। जप, ध्यान, उनका स्मरण, सद्ग्रन्थ पाठ, जितना दीर्घ समय उनको लेकर रहा जाय उतना आलोक पाने की यात्रा। गीता नित्य पढ़ना और समझने की कोशिश करना।

संसार की विचित्र विफलता जिस ओर बहती जाती है, वह भी अनन्त है। उसके भीतर अपने का बहा देने से, फँसा देने से जीवन का अशान्त, क्लान्त, विफलरूपी फल मिलना ही स्वाभाविक है। परन्तु वहाँ मन को रखना नहीं। मन की गति उच्च आदर्श में अपने पूर्ण लक्ष्य में रखना, लोकालोक के अगोचर में; कौन जानता है उनकी पुकार किसके भीतर से आती है। सहम नहीं जाना। तुम सत्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, शाश्वत हो। इस ओर स्वयं अग्रसर होने के लिए नयी भावधारा की गति में स्वयं चलना ही कर्तव्य है। विद्या और सुबुद्धि रूप में भगवान् ही तो भीतर हैं। इसीलिए इस अवसर में स्वरूप प्रकाश के यात्री की ओर यात्रा करना कर्तव्य है। समय तो चला जा रहा है। परम पिता, परम माता, परम बन्धु, सखा, स्वामी- एकाधार से वे ही सब हैं। उनके चरण ही स्मरणीय हैं।

भगवत् प्राप्ति का यात्री होने से अपना आवरण हटाने की क्रिया अपने को ही करनी पड़ती है। वह शक्ति की दिशा भी उन्हाने दे रखी है। परन्तु वे इस निज क्रिया में प्रकाशित नहीं होंगे। दरवाजा खोलने की चाबी वे दे देते हैं। वे स्वयं प्रकाश हैं-दरवाजा खुलते ही दिखाई पड़ता है।

जब जहाँ भगवान् जिस रूप में रखते हैं वहीं से ही भगवत् प्राप्ति का यात्री होना। सर्व रूप में, कर्म में अकर्म में

स्वयं वे ही तो। हाथ में काम, मन प्राण में जप, स्मरण में अपने को बाँध कर रखना। भगवान् के राज्य में उनका विस्मरण ही कल्याणकारी है। शान्ति का रास्ता उनको स्मरण करने से ही मिलता है।

विश्वरूप के अन्तर्गत भगवान का ही सर्वरूप। स्वरूप प्रकाश की यात्रा में चलना।

सोचना है तो उनको सोचना, काम करना है तो उनकी ही सेवा करना। यात्रिया को यात्रा में चलना ही तो चाहिए। भगवद्भाव लेकर समय काटना। यही तो यात्रा-रास्ता चलना।

यात्री मात्र को ही सतेज, सबल, अटल, सवेग होना चाहिए। मन की सतेज सबलता हर समय प्रयोजनीय है। अपना जीवन अपने आप बनाना है याद रखना।

वही महाशक्ति ही सर्व घट में मठ में पट म-स्वयं वे ही केवल उनको ही पुकारना। सन्तान के व्याकुल क्रन्दन से महाशक्ति महामाया का आसन हिलता है। जैसे वे कठिन आघात करते हैं, पुनः वे ही हृदय से लगाकर शान्त करते हैं।

समस्त क्रिया में तत्-भावना रखना। सब क्रिया से ही स्वरूप प्रकाश होगा कोई क्रिया अलग नहीं सोचना यही तो। क्रियाशक्ति कौन-तुम ही तो। शक्ति कौन? स्वयं ही।

भीतर शक्ति बोध करने से, नई सृष्टि अनुभव करने से जो जितना चुपचाप शान्त भाव से रहता है उसके भीतर शक्ति वृद्धि होती है। थोड़ा छिद्र पाने से ही निकलने की आशंका। सावधान! प्रयोजन के अनुसार वे ही सब कर देते हैं। शिक्षा दीक्षा सब।

हँडिया में जब चावल उबलता है, तब एक दबाव की सृष्टि होती है, जिसके कारण ऊपर का ढकना अपने आप ही खुल जाता है। जोर करके उसे खोलना नहीं पड़ता है। उसी



प्रकार तुम लोगों की जितनी शक्ति है उसे काम में लगाओ बाकी वे स्वयं कर लगे। भाव अभाव से व्याकुलता आती है, उसी से स्वरूप प्रकाश का रास्ता खुल जाता है।

एक होता है शक्ति का व्यवहार करना, और एक होता है स्वाभाविक, अपने आप ही हो जाता है। शक्ति का व्यवहार करने से 'मैं' रह जाता है। इसीलिए पतन हो सकता है। परन्तु जहाँ स्वाभाविक, वहाँ यह बात नहीं।

यदि शान्त भाव न आये तो अंग की विकलता नस नस में क्रिया करके उसे अकर्मण्य कर देती है। शक्ति धारण न होने से शक्ति की सुन्दर क्रिया शान्तरूप से प्रकाशित नहीं होती। परमार्थ भाव में सत्यानुसंधान की क्रिया में स्वभावतः ही शान्त करा देता है। शक्ति धारण का प्रयोजन है।

भगवत् शक्ति भगवान् के काम में न लगाकर दुनिया के काम में लगाने से शक्ति-क्षय होती है। परमार्थ शक्ति को दुनिया की ओर लगाने से उस शक्ति की धारा खण्डित होती है। साधन करते करते यदि शक्ति आ जाय तो उसे क्षय नहीं करना चाहिए।

तुम्हारी जितनी शक्ति उतना करते जाओ। कोई एक शक्ति लगाने से क्रिया की सृष्टि होती है। जो पढ़ाई लिखाई करता है उसके बात बोलने का तरीका ही दूसरे तरह का होता है। इसी प्रकार परमार्थ की ओर यात्रा करने से चलते चलते शक्ति की सृष्टि होती है। इस यात्रा में जो हटने का है हट जायेगा और धीरे धीरे जो नित्य, सत्य, बुद्ध और मुक्त वह प्रकट हो जाता है। लक्ष्य में सदा दृष्टि रखना, लक्ष्य भेद के लिए।

जगत् का कुछ अच्छा लगने से शक्ति क्षय।

## वासना आशा

वासना ही दुःख का कारण है उनको पाने की इच्छा ही सुख है। भगवान् धो पाछ कर अपनी गोद में लेते हैं न। यह कष्ट तो सुख के लिए है। सर्वदा उनको स्मरण रखना।

आशा का नाश ही सर्वनाश, वह सर्वनाश कहाँ हुआ? वासना आशा से तो गटगट कर रहे हैं। करना ही तो स्वाभाविक है, जीव स्वभाव? निर्भरता सबसे आनन्ददायक। वह आश्रय ग्रहणीय, वे जब जो करते हैं सब ही तो मंगल है, यह स्मरण।

संसार का शिशु क्या होना चाहते हो? ऐसा शिशु बनो जो और बदलेगा नहीं। शिशुत्व बदलने का कारण ही है वासना।

याद रखना -चाहना पाना एक ही स्थान म।

अपना एक वह छोड़ कोई चाह नहीं रखनी। केवल उनकी जो इच्छा उसी में सन्तोष करना।

वासनाजनित जो कष्ट है, बाधा विघ्न से आता है, उसके भीतर उनका करुणाहस्त सत्य है, समझते हुए मानना पडेगा। अस्थिर होने से नहीं चलता। अस्थिर भगवान के लिए होना पड़ता है। अभी तक उनकी आवाज सुनायी नहीं दी। अमूल्य समय वृथा चला जा रहा है। विषय-वासना में अस्थिर होकर मन और शरीर को क्लेषित नहीं करना चाहिए।

वासना कामना सहित तुम्हारा सूक्ष्म शरीर, जैसे फूल की गन्ध आती है जाती है। तुम्हारी ही जन्म-मृत्यु पुनः जन्म-मृत्यु कुछ ही नहीं होती। मृत्यु के बाद वासना कामना सहित सूक्ष्म शरीर वायुभूत निराश्रय हो जाता है। मनुष्य अपने कर्मानुसार जन्म लेता है। वासना जड़ित मैं या अहमिका आती जाती है-आत्मा के आने जाने का प्रश्न नहीं है। स्थूल सूक्ष्म कारण। कारण का कारण आत्मा। उसका प्रकाश न होने तक आना जाना है।

आत्मा स्वयं प्रकाश है। आना जाना, अपने को प्रकाश करने के लिए पर्दा हटाना मात्र है।

## विपत्ति

विपत्ति तो मनुष्य के ऊपर ही आती है जाती है, वीर की तरह धैर्य, शौर्य का आश्रय लेना। उनका विधान, उसी ज्ञान से उनकी ही शरण लेने की चेष्टा करना।

इस प्रकार भयंकर विपत्ति चारा ओर निराश्रय अंधकार के काले बादल हैं। मन की गति नाना चिन्ता और आतंकयुक्त रहना स्वाभाविक है। उपाय क्या? निरुपाय का आश्रय तो भगवान् ही। टूटना नहीं। जिस धरती पर गिरकर चोट लगती है उसी धरती का आश्रय लेकर ही उठने की कोशिश करना। भगवान् का विधि विधान-जिनका अस्त्र उनका ही तो सब-वे ही तो। माँ की गोद म-जैसे रखते हैं वैसे ही रहना। शरीर मन ठीक रखना। चिन्ता चिन्ता की आग में अपने को अवश की तरह समर्पण न करके, सब ही उनकी इच्छा से हो रहा है, यह भाव सर्वदा जाग्रत रखने की कोशिश करना। तत् चिन्ता ही पथ।

विपत्ति के समय धैर्य धारण करना चाहिए। आपत्ति विपत्ति मनुष्य की है- जो धीर वीर हो ही सकते हैं वे ही जीत सकते हैं। समय एक तरह रहता नहीं है इसी समय उनके ऊपर विशेष भाव से निर्भर रहना चाहिए। कौन जानता है वे कौन सी विपत्ति देकर विपत्ति काट देते हैं। किसी किसी समय वे विपत्ति देकर ही विपत्ति हरण करते हैं इसीलिए उनका नाम विपद्भञ्जन है।

विपत्ति को विपत्ति सोचना ही नहीं। विपत्ति सोचना ही पाप है। किसकी विपत्ति? वे जो करते हैं सब ही मंगल के लिए। किसी भी अवस्था में मनुष्य को टूटना नहीं चाहिए। सर्वक्षण

केवल याद रखना-गुरुदेव तुम मेरे लिए जो मंगल वही कर रहे हो। यह सब जगत् में होता ही रहता है।

## शान्ति

संसार में शान्ति की आशा करना वृथा है। केवल उनको लेकर रहने की कोशिश करना। कर्तव्य ज्ञान से सब सेवा करना। संसार तो सुख की जगह नहीं है। शान्ति की आशा में एकमात्र भगवत् चरण का आश्रय लेना।

जो नाम जो रूप अच्छा लगता है सर्वदा करने की चेष्टा, मन को केवल भगवान् की ओर रखना, तभी शान्ति की आशा है।

भगवद् ध्यान के अनुकूल रहना ही मुक्ति और शान्ति की दिशा, कर्म के अनुसार शरीर है। इसीलिए नाना प्रकार के रोग और दुःख भोग आना स्वाभाविक है। जिसकी चिन्ता में सर्वदुःख दूर होता है उसकी चिन्ता ही सर्वदा करणीय।

मनुष्य का सब आवेदन निवेदन भगवान् के पास। नित्य प्रार्थना, जिनकी सृष्टि, स्थिति, लय-उनम ही सब। संसार की क्लेशदायक क्रिया उपस्थित होने पर भगवान् के नाम के अनुकूल क्रिया में व्रती होकर उनके चरणा में रोने की चेष्टा। सर्वशान्त शान्तिमय स्वयं भगवान् हृदय में उनकी स्थापना करने से केवल शान्ति।

यह सब ही कर्मफल है। वे दुःख देकर दुःख हरण करते हैं विपदा देकर विपत्ति नाश करते हैं। और तो ऐसा नहीं दगे-यही सब समय याद रखना। और सच बात, अमृत की सन्तान हो, उनको ही सोचना चाहिए इसे छोड़ और शान्ति की आशा नहीं है, नहीं है, नहीं है-जिससे शान्ति मिलेगी, आवरण नष्ट होगा, विपद्हारी का प्रकाश होगा। विपदभंजन श्रीमधुसूदन-वही जो अपना एकमात्र हृदय का धन है।

सृष्टि स्थिति जिससे होती है, उनके पास ही सब आना जाना। उनके विधान में उनके ही पास। इसीलिए उनका स्मरण उनको पाने से ही सब पाना होता है-परम शान्ति परमानन्द!

यह जो औषध देने की तुम्हारी कोशिश है, यह भी तो उनकी इच्छा से हो रही है, पुनः एक वही जो सब म। तुम ही रोग रूप म, औषध रूप म, चिकित्सा रूप में सब रूप में ही तुम ही हो।

भगवत् नाम भगवत् चिन्ता छोड़ पृथ्वी में शान्ति की आशा नहीं है। कर्तव्य को प्रधान मान लेना। वे सब दुःख हरण करते हैं-जहाँ राम वहीं आराम। जहाँ नहीं राम वहाँ बे राम।

मन की शान्ति पाने के लिए परमार्थ पथ के अनुकूल जो रूप और भाव पसन्द करते हो, मन में सोचते हो, उसी मत और पथ का अनुसरण करना। अन्तर गुरु का प्रकाश जब तक नहीं होता तब तक परमस्थिति की दिशा कहाँ?

### शोक में सान्त्वना

यदि कोई अन्तर में समझे, कोई किसी का नहीं-तब क्या वे इतना दुःख सहन करते हैं। हाँ हर समय मोह के वश में भीतर भीतर समझा नहीं जाता। कड़वी औषध एवं जबरदस्ती इंजेक्शन से भी तो कोई कोई अच्छे होते हैं।

जगत तो, गति ही स्वाभाविक, एक तरह का समय नहीं जाता। समय शब्द वहीं काल में निबद्ध है। कालातीत में नहीं जाने से क्या काल के हाथा से बचा जा सकता है? जिस मुहूर्त में दुःखवेदना का प्रकाश होता है, यदि काल ग्रास न करता तो क्या शरीर धारण करने का कोई उपाय था। संसार ऐसा ही है। घर घर में यह घटना नित्य घटित हो रही है। अपने को अपने आप सान्त्वना देना-इस जगत का यही रूप है।

विदेश में रहना होगा और विदेश के कष्ट का अनुभव नहीं होगा-यह कैसे हो सकता है? अपना वही स्वदेश जहाँ शोक, दुःख, हिंसा, द्वेष, विद्वेष का प्रश्न नहीं है, पुनः प्रकाश अंधकार का भी प्रश्न नहीं है। उस स्वदेश में स्वभाव में अपने को पाने की चेष्टा करना ही मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य है।

किसी भक्त की पत्नी के वियोग में माँ ने कहा-“पिताजी को लिख दो-पिताजी टूटने से तो नहीं चलेगा। आज इन बच्चा को कौन सम्हालेगा? माता पिता दोनों प्रकार से पिताजी को ही सम्हालना पड़ेगा सब तरफ। वीर की भाँति धीर स्थिर गम्भीर भाव से, उपस्थित जो कर्तव्य वह सब करते ही जाना पड़ेगा। केवल धैर्य, धैर्य, धैर्य। यह तो संसार का रूप है। आत्मा का ध्वंस कहाँ। सभी में तो वही प्राणवायु एवं आत्मा। शरीर का ही तो परिवर्तन होता है शरीर जो सरक जाता है। नित्य नहीं रहता। इस बात से इस समय मन नहीं मानेगा सच है; मन का धर्म हू हू करना, हाहाकार से छटपट करना है। परन्तु अपने को अपने आप ही सम्हालना पड़ेगा उपाय क्या?”

जिनकी सृष्टि उनकी व्यवस्था में उनके पास ही वह है। वे जब जिसको जिस भाव में रखते हैं सभी मंगल है। सब उनकी ही व्यवस्था है ना-उनम ही तो। आपेक्षिक अर्थात् अपेक्षा रखकर जो सुख प्राप्त किया जाता है, उसका परिणाम ही यह शोक है। मनुष्य मात्र का ही कर्तव्य शान्त स्वरूप उस भगवान् की ही चिन्ता करना। भगवत् चिन्ता के अनुकूल नहीं लेने से शान्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती।

भगवान् का सब है। उन्हाने सेवा करने के लिए दिया है। यथासाध्य कर्तव्य पालन करना। जिनका सब है, उनके ऊपर भरोसा करने की कोशिश करना। घबड़ाने से कोई काम ठीक से नहीं होता। घबड़ाना माने मन की अशान्तता। चिन्ता आना तो स्वाभाविक है। पिता माता तो। परन्तु विचार करने की कोशिश करनी चाहिए। सब ही उनका है-व्यवस्था भी उनकी ही। अपने आप कोशिश करके यदि कुछ कर सकते तो सभी इच्छानुरूप

करते। इसीलिए जिसका सब उन पर निर्भर रहने की कोशिश करना। यथासाध्य कर्तव्य पालन करना।

जन्म पूरण करने के लिए ही सब जीव, भगवान् की इच्छा ही पूर्ण होती है। भगवान् की सेवा यह सोचना-मोह से आच्छन्न नहीं होना। उनका दान उन्हीं को प्रदान। उन्हाने ही लिया है, लेते हैं, ले रहे हैं। आत्मरूप म- सब में नित्य हैं ही। शान्ति और धैर्य धारण की चेष्टा करना।

भगवान् के राज्य म, विश्वजगत् में सृष्टि स्थिति लय-यह चिरन्तन आना जाना। प्रियजना का दुर्वह दुःख-धैर्य का आश्रय छोड़ उपाय नहीं है। उनका विधान है। प्रियजन की ऊर्ध्वगति की प्रार्थना करना। इस दुःख-सागर को पार करना पड़ेगा। मन के न चाहने पर भी कोशिश करना। आँखा का पानी, आकर्षण इत्यादि से प्रियजन को दुःख नहीं देना चाहिए। भगवान् का भिन्न किसी ओर शान्ति का रास्ता नहीं। जिनको ले गये हैं- उनम ही वे हैं।

किसी भक्त के मातृवियोग में माँ ने कहा-“दोस्त को लिख दो-लक्ष्मी, भाग्यवती, स्वामी, पुत्र-कन्या सबको रखकर आज शान्ति धाम में ऊर्ध्व गति में चले गये। उनके शरीर के लिए रोना दुःख करना उचित नहीं। यद्यपि रुलाई आना स्वाभाविक है। धैर्य धारण करना ही पड़ेगा। पिता-माता का जैसे लक्ष्य रहता है कि सन्तान आनन्द और शान्ति से रहे सन्तान का भी यही कर्तव्य है। जिनको परमस्थिति नहीं मिलती, गति के भीतर रहते हैं; इहलोक में उनके शरीर को लक्ष्य करके रोना एवं व्याकुलता उनको कष्ट देते हैं। अर्थात् विशेष कष्ट होता है। प्रकाश नहीं हो सकता किन्तु कष्टबोध होता है। प्रियजन को कष्ट नहीं देना चाहिए। यह याद रखना मेरी माँ मेरी आत्मा जिससे सृष्ट हुआ हूँ उसकी शान्ति ही अपनी शान्ति है ऐसा सोचना चाहिए। भगवान् के विधान से ही तो यह गति है। उन्हीं का जन तो हूँ। उनकी जैसी इच्छा, जहाँ, उस तरह उस गति में उसी स्थिति में रखगे तो। पिताजी के पास मन खराब नहीं करना। सुन्दर

भाव से सबकी सेवा करना। सोचना सेवा का भार भगवान् ने हम लोगों को दिया है। पिताजी का मन खराब न होने देना। तुम लोगों के मुख पर कष्ट की छाया देखने से पिताजी का दुःख और भी बढ़ जायगा। इस बात को याद करके पिताजी के पास अपने आप सँभल के रहोगे।”

## संसार

संसार तो युद्ध क्षेत्र है। परम धन में धनी होकर युद्ध में जयी होने की चेष्टा करना।

जिन्हाने संसार को सार माना है वे ही तो संसारी-वहाँ सदा ही संसरण और संस्करण। नित्य जाना आना सुख दुःख का झूला है। जो लोग नाना वेश में सजते हैं वे अपना स्वरूप नहीं भूलते। तुम लोग तो अमृत के पुत्र हो। तुम लोगों का स्वरूप तो सत्यम् शिवम् सुन्दरम् है।

संसार जिन्हाने दिया है- धन, मान, यौवन, उनके लिए उनको पुकारना। क्या नहीं कर सकते हो? करना ही पड़ेगा। मनुष्य तो सब कर सकता है। कौन जानता है किसके भीतर से वे किसको क्या दगे? उन्हीं का तो सर्वस्व है। क्या लेकर जन्म? खाली हाथ में तो? और यह सब पाना क्या अपने लिए। सब उनका। वे जो इच्छा करते हैं- इस भाव को रखने की कोशिश करना।

संसार का यह रूप। साधारण सबका शरीर भोग का शरीर है तो। वासना जो रहती है उसे भोग करने के लिए ही तो संसार में आना पड़ता है। संसार का सुख और भोग अनित्य है न- इसीलिए नाना प्रकार के दुःख साथ रहते हैं, मन को मोहाच्छन्न करते हैं। निर्वासना होकर नित्यानन्द के लिए महा महारथी, महाजन, महापुरुष रास्ता दिखा देते हैं। नित्यवस्तु का अनुसन्धान ही मनुष्य का कर्तव्य है। जहाँ जगत् के दुःख का स्थान नहीं है, उसे पाना ही मनुष्य को वांछनीय है। धर्मशाला



जितने दिन जिसके लिए, उतने समय तक ही तो रहना है।  
उन्हीं का जो विश्वरूप। वे ही इस प्रकार सेवा ले रहे हैं। मन  
को जाग्रत रखना- यत्र जीव तत्र शिव, यत्र नारी तत्र गौरी। तत्  
रूप में केवल सेवा। मन का प्रियजन के अभाव की ओर जाना  
स्वाभाविक है किन्तु भगवान के चरणा में मन को लगाना ही  
पड़ेगा। ऐसा होने से ही प्रियजन और अपनी शान्ति की  
दिशा, याद रखो।

मेरा मान कर सब पकड़ कर रखा है-यह सब दुःख पाने  
की कोशिश है उनका ही सब इसीलिए उनको पुकारना। उनका है,  
इसीलिए उनको पुकारना, यही बड़ी पुकार है। जगत् का यह  
सब पाकर क्या होता है? इतने दिन तो देखा, इन सबका  
परिणाम तो यह है। धन, जन, यौवन जहाँ, जरा, मृत्यु, व्याधि  
दरिद्रता यह सब भी उनके भण्डार में है। यह सब भोग करना  
ही पड़ेगा। इस जगह सुख आराम का स्थान नहीं। दुःख का  
स्थान पग पग पर, देखा तो? अभी भी मन में नहीं आता कौन  
किसका है?

जगत् की चिन्ता में पागल क्या होंगे? परमार्थ चिन्ता में  
पागल होना पड़ता है। विशेष धारा सब समय उपस्थित नहीं हो  
सकती है। परन्तु प्रवाह रहना आवश्यक है। इस प्रवाह के साथ  
धारा आनी स्वाभाविक है, जगत् के विक्षेपयुक्त व्यापार में क्या  
बह जाओगे? बहना है तो परमार्थ की बाढ़ में बहो।

इस संसार में मालिक न होकर माली होकर रहना।  
मालिक होने से ही जितनी गड़बड़ है। माली हो सकने से और  
कोई झगड़ा नहीं बस यह संसार भगवान् का, मैं सेवक मात्र-  
उनके निर्देशानुसार मैं केवल सेवा करता जाऊँगा। इस भाव को  
सर्वदा रखते हुए यदि गृहस्थाश्रम में भी रहा जाय तब और  
कोई नवीन बन्धन की सृष्टि नहीं होती, केवल प्रारब्ध भोग  
करते जाना मात्र। इस बात को हर समय याद करके यदि  
संसार किया जाय तो और डर कहाँ? वे ही सब ठीक कर ल.  
गे।

अनित्य संसार-उसके लिए सोचकर इतना मन खराब क्या करना? कर्तव्य पालन करते जाना, वीर धीर होकर। वे ही सब करते हैं-यही याद रखना। वे जो कराते हैं वही ठीक है। उनके हाथ के यन्त्रवत् अपने को रखने की चेष्टा करना। इतनी चिन्ता नहीं करना।

किसी की अस्वस्थता का समाचार सुनकर माँ ने कहा-केवल उन पर निर्भर रहो। जिस अवस्था में रहना, केवल उनका ही स्मरण करना। ठाकुर तुम ही रोग रूप में आये हो। सहने की शक्ति दो, धैर्य दो। यह प्रार्थना भगवान् के पास करना- ठाकुर तुम ही जो इस रूप में हो यह समझने दो।

स्वरूप प्रकाश के लिए द्रुतवेग से रास्ता खुलने की दिशा लेनी है। संसार में रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध जीवन यात्रा की दिशा न होना ही। विश्वजगत् के अन्तर्गत किस प्रकार का परिवेश है भलीभाँति उसे देखा गया है-और उधर मन नहीं रखने की दिशा लेना ही ठीक है। असार संसार, आना जाना बार बार, कोई नहीं किसी का फिर भी क्या उसे चाहना बार बार?

संसार-यात्रा में कोई कभी भी सुखी नहीं होता। परमार्थ यात्रा ही परमसुख का रास्ता है। वही अपने रास्ते में अपने आप चलने की कोशिश करना, जहाँ सुख-दुख का कोई प्रश्न ही नहीं - अभिमान शून्य परमानन्द की दिशा है।

संसार-यात्रा में नाना क्लेश हैं, एक एक रूप में एक एक जन के पास पकड़ में आता है। जीवन यात्रा में जितना कष्ट उतना ही सोचना- यह कष्ट तो मुझे और नहीं मिलेगा। तपस्या हो जा रही है-भगवान् की ओर ले जा रहे हैं।

संसार-यात्रा में किसी न किसी समय भयंकर रूप से मनुष्य के मन में कष्ट देते हैं, फिर भी इस समय भगवान् की बात ही याद रखने की कोशिश करना। कल्याणमय का स्मरण सर्वदा करना।

गोल वस्तु को माल समझ कर बैठे हो न इसीलिए इतना गोलमाल। गोल वस्तु क्या है? रुपया। वही एकमात्र अखण्ड को पकड़ने की कोशिश करो। वहाँ आकार निराकार की बात नहीं। वहाँ कोई गोलमाल नहीं।

दुनिया में किसी न किसी चीज के लिए सभी पागल हैं, कोई कम, कोई ज्यादा। भगवान् की लीला कैसे मजे की है। कैसे पागलखाना बना रखा है अपने को लेकर ही अपनी खोज।

संसार अर्थात् संशय का स्थान। जिसने स्वांग को सार समझा है वही स्वाँग सज रहे हैं। इसीलिए संसार।

श्रद्धाभक्ति की दिशा लेकर चलने की कोशिश करना मनुष्य का कर्तव्य है। संसार का धक्का स्वाभाविक है। इससे संसार क्या चीज है यह शिक्षा मिलती है। उसके बाद भोग की दिशा में शिथिलता आती है।

विदेश में रहने से ही दुःख, अपने घर में अपने जन के पास रहने से आनन्द है। इसीलिए अपना घर अपने जन को खोजना। विदेश में रहकर और कितने दिन कष्ट पाओगे?

हाथा से काम करोगे; मन मन में इष्ट नाम जप करोगे। उससे काम भी अच्छा होगा और संसार में भी मंगल की आशा होगी। धर्म को छोड़ कर संसार करने से ही दुःख के सागर में बहना पड़ता है। संसार करने से धर्म का संसार करना ही सबका कर्तव्य है।

उनको पुकारना, उन पर ही निर्भर रहना। जहाँ रहना उनकी ही गोद में, जगत् में सुख पाने के लिए उनको ही पाने की इच्छा करना। संसार तो इस प्रकार है देख लिया। दिन प्रतिदिन दुःख की लहर आ रही है। इसी को संसार कहते हैं।

## सत्संग

सत्संग मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। सत्संग सद्बुद्धि के अनुकूल जितना सत्संग हो, उतना ही कल्याण होगा।

सत्संग अनुकूल होने से कोशिश करना। नहीं मिलने से सद्भाव का बन्धन सर्वक्षण हृदय में बाँध रखने की कोशिश करना ।

उस मजे का थोड़ा सा आस्वाद पाने से ही इधर का मजा लेने की इच्छा भी नहीं होगी। बिल्कुल सच बात है। साधुसंग, सत्संग, सद्ग्रन्थादि पाठ इत्यादि से उधर की रुचि होती है। कुछ छोड़ना नहीं पड़ेगा, केवल उनको पकड़ने की कोशिश करना। जो छूट जाने का है वह अपने आप ही छूट जायेगा।

तत् परिवेश में सुरक्षित रखना। सत्संग में सत्परिवेश में स्थिति के लिए सत् क्रिया में नित्य मन को ब्रती रखने की कोशिश करना।

जितनी देर हो सको, उनका नाम जप करना उनका संग करना। जागतिक मित्र का संग करने से वह जैसे अपनी सारी बातें तुमको बता देते हैं- उसी प्रकार परमबन्धु का साथ करने पर वह अपना तत्त्व तुम पर प्रकट कर दगे। समुद्र की लहर देखकर तुम क्या समुद्र स्नान बन्द करते हो? लहरा के भीतर स्नान समाप्त कर लेते हो। उसी प्रकार सांसारिक आँधी तूफान में उनका ही स्मरण, जप लेकर रहने की कोशिश करना।

महात्मा का संग करना। अर्थात् उनके पास से जो सुना उसका यथातथ्य पालन करना।

सत् परिवेश में सदालोचना में हर समय मन रखना ही प्रयोजन। अवसर मिलते ही कीचड़ में खींच लेने की दिशा होती है- हर समय मनुष्य मात्र को यह याद रखना चाहिए।

सत्यस्वरूप भगवान् का संग माने ही सत्संग। जिसका आश्रय लेने से सभी दोष दूर हो जाते हैं उनका ही आश्रय करना। वे ही पिता, वे ही माता, वे ही बन्धु सखा सब हैं-यह ज्ञान रखना चाहिए। वे क्या बिना दिए रह सकते हैं? तुम्हारी तीव्र इच्छा है और प्रकाश नहीं होता, ऐसा हो ही नहीं सकता। रास्ता लम्बा या छोटा है, इस प्रश्न को मन में स्थान ही नहीं देना। मुझे प्राप्त होना ही चाहिए यह भावना रखनी चाहिए। अपनी पूर्ण शक्ति तुम लगाओ तब तो तुम्ह मिलेगा। आना जाना है ही नहीं। मैं आत्मा इस भाव को रखना। आने जाने से मुक्ति पाने के लिए गुरु का आश्रय लेना पड़ता है। कहाँ आना? कहाँ जाना? जिनका आश्रय लेने से मुक्ति मिलती है, वे सर्वत्र हैं।

महापुरुष के पास यदि आते रहो तो अवनति हो ही नहीं सकती। आग के पास जाओगे और ताप लगेगा नहीं? संसार में आने जाने के हाथ से छुट्टी पाने के लिए महात्मा के पास आना जाना। आना रहने से जाना, जाना रहने से आना।

जैसा संग वैसा विश्वास-इसीलिए सत्संग करना चाहिए। विश्वास अर्थात् अपने को मानना। अविश्वास अर्थात् दूसरे को मानना। मनुष्य के भीतर जो विश्वास भाव है, वही भगवान् के ऊपर विश्वास ला देता है। इसीलिए मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है। विश्वास किसी का भी नहीं है, यह बात कही नहीं जा सकती। किसी न किसी प्रकार से विश्वास है ही।

गृहस्थ का कर्तव्य है सत्संग। जहाँ पर भी भगवत् आलोचना, उनका प्रसंग, भजन, कीर्तन हो वहीं जाना। भेद बुद्धि मत रखना, उदार भाव से लेना। तुम्हारे गुरु जगत् के सभी के गुरु हैं, सभी के गुरु तुम्हारे गुरु हैं। तुम्हारे गुरु या इष्ट थोड़ा भी नहीं। सर्वस्थान में सर्वरूप में वे ही । मन में प्रार्थना करना-हे ठाकुर! हे मेरे इष्ट! तुम्हारा कितना सुन्दर सुन्दर प्रकाश है सभी जो तुम हो, मुझे यह समझा दो।

सन्देह लेकर 'आलोचना'-निःसन्देह होने के लिए ही तो! इसीलिए आलोचना अच्छी है। कौन जानता है तुम्हारा पर्दा कब हट जायगा। आलोचना अर्थात् तुम्हारा लोचन दूर करना। यह दृष्टि तो दृष्टि नहीं। यह तो वहाँ जाने के लिए ही है जहाँ दृष्टि सृष्टि का प्रश्न नहीं है। वही दृष्टि जो अलोचन, दृष्टि-हीन दृष्टि, ज्ञान चक्षु।

### सत्य सत्यानुसन्धान

सत्य ही सत्य की रक्षा करता है। सैंकडा कामा में सैंकडा बाधाएं हैं। बाधा की ओर न देखकर यदि हम सत्यपालन की दिशा लेकर कोशिश कर तब किसने क्या कहा, उसकी सत्यव्रतिया को परवाह नहीं होनी चाहिए। जो सत्य बात कहते हैं और सत्य परिवेश में रहगे, भगवान स्वयं उनके रक्षक हैं।

सत्यवादी सब ओर। शुद्धता न रहने से भगवान की ओर अग्रसर हुआ नहीं जाता।

सत्य प्रत्यक्ष होने के लिए दृष्टि सजग रखनी होगी अपने घर की खिड़की दरवाजे खोलकर रखना-किस मुहूर्त में प्राण में उनकी हवा का स्पर्श लगे।

जहाँ सत्यानुसंधान ठीक ठीक हो, वहाँ कभी भी विफलता नहीं मिलती। शरीर मन पवित्र करने के लिए भगवत् स्मरण, जप-ध्यान सत्संग और सद्ग्रन्थ पाठ करना चाहिए। इसके लिए विशेष गुरु का उपदेश आवश्यक है।

जीवन को एकदम पूर्ण रूप से परिवर्तित कर लेना। परम पथ की ओर तेजस्वी साधक के रूप में आगे बढ़ते जाना। वे सर्वक्षण सहायक रूप में साथ हैं, याद रखना। जिनकी सेवा में व्रती हो वे स्वयं ही रक्षक हैं। भीतर भीतर अनुभव करने के लिए तन-मन-प्राण देकर अपने को शोधित करने की चेष्टा करना। एक साल यदि सच बात, सच्ची निष्ठाभावना से

ठीक-ठीक रहा जाय तब कहते हैं सत्य के आभास का फल थोड़ा सा दिखाई पड़ता है। आकार इंगित में भी मिथ्या का प्रकाश न हो।

अमूल्य समय चला जा रहा है। इधर उधर सोचने के लिए समय देना क्या? अपनी यात्रा-सफलता की चेष्टा करो। सत्यानुसंधान के बिना मनुष्य के विघ्न-विनाश का रास्ता नहीं खुलता। केवल अपने को पाना। अपना अनुसंधान करणीय नहीं है क्या?

सत्यानुसंधान द्वारा मनुष्य ऊर्ध्व में जा सकता है।

अमृत का संधान पाने के लिए तदबुद्धि सब समय अनुकूल है। अमरत्व की ओर जाने के लिए सत्यानुसंधान ही मनुष्य का कर्तव्य है।

### समाधि

सब प्रकार के कर्म और भाव के पूर्ण समाधान का नाम समाधि है, ज्ञान-अज्ञान से अतीत अवस्था। तुम लोग जिसे सविकल्प कहते हो, वह भी उसी अन्तिम अवस्था में पहुँचने के लिए साधना है। प्रथमतः रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्दादि पंचतन्मात्र का जो कोई भी एक तत्व, वस्तु या विचार उपलक्ष्य होता है उसी को लेकर ही शरीर जम जाता है। बाद में सभी लक्ष्य यही सर्वमय होकर अहं ज्ञान को क्रमशः एक में लीन करके एक ही सत्ता में प्रतिष्ठित करता है। यह अवस्था जब उत्कर्ष को प्राप्त होती है तब इसके अन्तिम परिणाम में वह एक सत्ता भी कहाँ लय हो जाती है एवं तब क्या रहता है या नहीं रहता यह समझने की कोई भाषा या अनुभूति नहीं रहती।

पूर्ण समाधान अवस्था में साधक का सगुण निर्गुण का द्वन्द्व चला जाता है।

तत् स्थिति में सब ठीक ठीक देखोगे।

### साधना साधक

स्व-धन लाभ की चेष्टा ही साधना है। उनका ही सब; उनके चरणा में पड़े रहने को छोड़ और कोई उपाय नहीं है। चिन्ता करनी है तो उनकी ही चिन्ता करनी चाहिए।

स्वधन प्राप्ति की इच्छा ही साधना है। उनके पास अभ्यास करना मुझे लीजिए, मुझे लीजिए, यही तो साधना है। वे साधना रूप में अनन्त हैं। अपने घर में लौटने के लिए आत्मबल चाहिए, गुरुकृपा चाहिए। एक हुआ क्रम प्रकाश; और एक कृपा प्रकाश। जैसे अन्धकार घर अचानक आलोकमय हो गया। पुनः क्रम प्रकाश की साधना भी अनन्त हैं। कर्म में क्रम कृपा होती रहती है। घिसते घिसते आग जलती है। प्रकाश की दिशा खुलती है। पुनः होती है अहेतुकी कृपा, क्रम का स्वरूप वह नहीं है, इसीलिए कहा जाता है उनको पाने का पता कहाँ है? इसीलिए ही कृपा करुणा की प्रार्थना करनी चाहिए।

गमले में जैसे पेड़ है, पेड़ मिट्टी के साथ युक्त है। केवल गमले को लेकर जैसे तुम पेड़ का स्थान परिवर्तन करा रहे हो वैसे ही हृदयासन में भगवान् को स्थापित कर लेना। स्थान परिवर्तन होने पर भी हृदयासन में भगवान् स्थित हैं याद रखना।

जिस परिस्थिति में रहना उस परिस्थिति को ही आत्म चिन्ता के अनुकूल कर लेना, सर्वक्षण मनुष्य का कर्तव्य होना चाहिए।

आहार निद्रा संसार का सुख तो पर्याप्त देखा गया है, युगयुगान्तर से। वह क्रमशः बढ़ता ही जाता है। इसके अनुकूल जाना ही नहीं, किस मुहूर्त में उस शान्ति का प्रकाश होगा वह मनुष्य का जाना हुआ नहीं है। सोचना- जब तक नहीं मिलेगा तब तक तत्कर्म छोड़ूँगा नहीं। चौबीस घण्टे सर्वक्षण उनम मन



बाँधकर रखना जितना मन रहता है उतनी शक्ति वृद्धि होती है—  
वही शक्ति परमपथ की साथी है, याद रखना।

शुद्ध पवित्र फूल ही भगवान के चरणा में चढ़ता है।  
अपने को भगवान के चरणा में चढ़ाने के लिए शुद्ध पवित्र  
भाव को बनाए रखो। जो आत्मा हैं प्राणा के प्राण उनकी बात  
उनका गुण वर्णन करना व उनका रूप सभी में देखने की चेष्टा  
करो। अकेले? अकेले कहाँ? बन्धु क्या बन्धु को छोड़कर है?

यह शरीर जो कहता है करते जाओ, आपत्ति मत करना।  
तुम लोगों के सभी के मंगल के लिए ही जानना। वृत्तिनिरोध  
का उपाय केवल एक वृत्ति में रहना। वह एक वृत्ति न जगने  
से भीतर की प्रवृत्ति जायेगी ही नहीं।

कुछ भी वृथा नहीं जाता। सब चीजा का ही प्रयोजन है।  
सोचो तुम रेलगाड़ी से कहीं जाओगे। गाड़ी पकड़ने के लिए  
तुम गाँव से नाव में ढाका आए, नाव से उतरकर स्टेशन जाने  
के लिए एक लाठी के सहारे घोड़े की गाड़ी पर चढ़े। यद्यपि  
रेलगाड़ी से जाना तुम्हारा उद्देश्य है फिर भी नाव, लाठी, घोड़े  
की गाड़ी आदि को जैसे तुम वृथा सोच नहीं सकते, उसी तरह  
भगवान् को पाने के लिए तुम जो कुछ कर रहे हो, याद रखना  
सभी का प्रयोजन है। कुछ भी वृथा नहीं।

नित्य भगवत्-क्रिया-सूत्र अखण्ड रूप से सुरक्षित रखना  
चाहिए। भगवान् अखण्ड अनन्त प्रकाश देते हैं।

शान्त परिवेश में भीतर ही भीतर भगवान् का स्मरण-भगवत्  
चिन्ता लेकर रहना। प्राण के ठाकुर को प्राणा में ही याद  
रखना।

स्वस्थ अस्वस्थ म, अनुकूल प्रतिकूल देखना नहीं।

मनुष्य जन्म दुर्लभ है। यदि इष्ट चिन्ता में समय नहीं दिया  
गया तो सोचना-मैं क्या कर रहा हूँ? मेरा सारा जीवन क्या

इस तरह चलेगा। जो कोई इस दिशा को ले सकेगा, उसका मंगल होगा। न करने पर मृत्युगति।

देखो, गुलाब को तोड़ने के लिए अनेक कांटा में से हाथ बढ़ाना पड़ता है। परन्तु गुलाब की ओर लक्ष्य रहने से और उसको तोड़ने की आकांक्षा रहने से कांटा के डर से कोई लौट नहीं जाता। जिसके लिए जैसी व्यवस्था माँ ही उसकी व्यवस्था करती हैं। किसके लिए कैसी व्यवस्था की जरूरत है वह माँ ही तो जानती हैं। यह विश्वास यदि रहे तो दुःख का कोई कारण नहीं है।

सद्ग्रन्थ पाठ और भगवान् का नाम-गान- कलियुग का सार- भवसागर पार होने का उपाय है। मृत्युयात्रा तो पर्याप्त हो गयी। सुख दुःख तो पर्याप्त मिला। अमृत यात्री बनना अपने घर लौटना।

उनको न पाने की व्यथा, उनको पाने में सहायक है।

जब तक बाहर भाव के अनुकूल सत्संग का परिवेश न मिले सबके हृदय में जो रहते हैं वह वासुदेव भावनीय हैं, (अर्थात् उन वासुदेव का स्मरण करना चाहिए) उस संग द्वारा अपने को तैयार करना, जो करने से सद्भाव का संग होता है, तदनुकूल कर्मादि करना।

प्रथमतः स्नान, आहार सहज भाव से करना, सुनिद्रा जिससे हो। तभी भगवान् का स्मरण ध्यान इत्यादि सहज होगा। शरीर स्वस्थ रहने से मन को उनके चरणा में लगाने की सुविधा होती है। क्रमोन्नति में आहार निद्रा जहाँ जितना भी अपने से परिवर्तित हो जायेगी।

भगवत् चिन्ता का आश्रय छोड़ संसार की अशान्ति से मुक्त होने की दिशा और नहीं है। जो सृष्टि-स्थिति-लय रूप में प्रकाशित हैं उनके प्रति मन को लगाने की अनुकूल क्रिया करना। दुःख, अनुताप में मन को कष्ट होता है, शरीर नष्ट

होता है। दूसरा कोई फल नहीं देता। जिनके विधान में सब कुछ है केवल उनका ही स्मरण करना।

ख्याल रखना, किसी भी परिस्थिति में संतोष न आये। किसी के दर्शन में, कोई कुछ अनुभव में, कोई या तो किसी आनन्द का अनुभव करता है, सुख बोध करता है- तब सोचते हैं स्वयं ही भगवान्। आध्यात्मिक मार्ग में परम प्रकाश के पूर्व विभूति में इस प्रकार फँस जाते हैं। वही विघ्न है।

सर्वदा प्रसन्न भाव रखना, वह आध्यात्मिक क्रिया के अनुकूल है। उदास भाव परमार्थ मार्ग में विघ्न उत्पन्न करता है। जब उनको लेकर रहना पड़ता है, निर्बन्धन होकर चलना।

परिवर्तन उसे कहते हैं जागतिक भावधारा जहाँ शिथिल हो। जागतिक भावधारा जितनी शिथिल होती है उतनी ही आनन्द की दिशा मिलती है।

कोशिश करके आसक्ति का त्याग नहीं होता। केवल उनको पाने की आसक्ति बढ़ाने से ही आसक्ति का त्याग हो जाता है। जागतिक वस्तु का ही त्याग होना चाहिए। आनन्द और शान्ति सबका लक्ष्य-वह सब में है। वह तो त्यागा नहीं जाता।

निज स्वरूप प्रकाश के लिए एकादश इन्द्रिया का संयम करना, तन्मुखी होना। उनको स्मरण करने के लिए एकादशी व्रत करना।

संकल्प पूर्ण करने के लिए बार-बार कोशिश करना-जब तक अनुभूति नहीं पा रहे हो तब तक इसे छोड़ कर नहीं रहूँगा, ऐसा दृढ़ संकल्प करना।

“मुझको” हटा सकने से “तुमको” पाया जाता है। साधन भजन का लक्ष्य ही अहंकार को चकनाचूर कर देना है।

व्याकुल होना ही पड़ेगा। व्याकुलता हम लोगों का स्वभाव है। उनको पाने की व्याकुलता हम लोगों को स्वतः ही आती है। स्व-धन लाभ होने से ही व्याकुलता चली जाती है।

एक है गृहस्थाश्रम की दिशा और एक तदज्ञान में सेवा की दिशा, और एक है केवल अपने को पाने का लक्ष्य लेकर अखण्ड गति में चलने की दिशा।

गुरुशक्ति का जब तक प्रकाश नहीं होता तब तक निजस्व स्वरूप बोध की विशेष यात्रा ही आरम्भ नहीं होती। इसीलिए धारावाहिक गति नहीं मिली। प्रकृति की गति में साधन चलता है तो! इसीलिए मनुष्य का कर्तव्य है तीव्र तेजस्वी गति होने के लिए सर्वक्षण केवल कोशिश।

आत्मस्थ और आत्मदर्शन की बात जो सुनी जाती है यह तो केवल सुना ही जाता है, पकड़ने का उपाय तो है। स्थूलतः जो मार्ग पकड़ने से हम लोगों को यह सब पकड़ने में सहायता होती है वह रास्ता ही तो हम लोगों को अपनाना चाहिए। यह जो देखते हो ना, हवा चल रही है, जिस हवा के न रहने से हम लोगों का शरीर नहीं रहता-वह हवा पेड़, पत्थर, जीवजन्तु किसे छोड़कर? तुम लोग क्षिति, अप्, तेज, मरुत्, व्योम क्या-क्या सब कहते हो ना? उसी का एक-एक विषय लेकर हम लोगों की समझ की सहायता के लिए कहना। जैसे कहा जाता है सत्, चित्, आनन्दस्वरूप सत्य चैतन्य तभी तो आनन्द है। हम लोग हर समय जागतिक दृष्टि से जिसम स्थूलतः चेतन और अचेतन का प्रकाश देख सकते हैं, असल में उसम वही सत्य चैतन्य नित्य ओतप्रोत भाव से, उसका साधारण में प्रकाश नहीं है। उसको विचार में लाकर, जैसे देवपूजादि करते समय प्राण प्रतिष्ठा इत्यादि करनी पड़ती है उसी प्रकार हमारे प्राण-वायु के रूप में हमारे भीतर (सबके भीतर बुद्धि है न, इसीलिए भीतर कहा जा रहा है) सर्वक्षण क्रिया कर रही है। इसीलिए तो मैं, तुम, साकार, निराकार कहा करती हूँ। हर समय ख्याल रखना पड़ेगा, प्राण-वायु जैसे हमारे में एक अविच्छिन्न रूप से

है-यह कौन? यह हमारे उसी चैतन्य का एक रूप है, इस रूप में प्रकाशित है। हम लोग यदि गुरुदत्त मन्त्रादि लेकर उस प्राण का संग कर सक एवं किसी समय मन्त्र नहीं भी रहे, केवल प्राण का संग कर सक, तब हम लोगों का मन स्थिर होने में सहायक होगा और प्राणा का प्राण, जो अखण्ड नित्य है, उसके सन्धान में सहायक हो सकता है।

सच्चिदानन्द स्वरूप, जहाँ नित्यलीला, वहीं दर्शन तो जितेन्द्रिय अतीन्द्रिय का प्रकाश नहीं होने से हो नहीं सकता। और वह न होने तक आत्मदर्शन, अन्तर्स्थिति प्रकाश कहाँ? आत्माराम में नित्यलीलारूप में प्रकाश, तभी तो एकात्मबोध होता है। हम लोग जो कर जिधर मन द, जैसे चंचलबाबू एक लय में ठीक ठीक घड़ी के कांटे के समान (चाहे fast हो या slow) अविराम काम करते जा रहे हैं। उसी प्रकार प्राण वायु की ओर मन रखने की चेष्टा करना, ऐसा होने से मन बाहर के हृदय में घूमने फिरने की अपेक्षा सीमा के भीतर रहता है। देखते हो ना, चंचल बालक को एक बार पकड़ कर ले आने से वह सामयिक होने से भी स्थिर भाव धारण करता है। चंचल को शान्त करने के लिए एक लक्ष्य एक मात्र आश्रय का प्रयोजन है। सत्भाव का स्वरूप सत्संग है, उनका जितना ही संग होगा, उतना ही मनोवांछा पूर्ण होकर शान्तरूप धारण करेगा। बुद्धि अहंकार की सहायता से मन प्राण से संगबद्ध होने की चेष्टा करोगे। असल में बात क्या है-अखण्ड धारा ही अखण्ड का प्रकाश।

जो उनके पथ में बाधा है, उसे मूल सहित दूर करने की चेष्टा ही साधना है।

जीव जगत में कइया के कई तरह के भोग हैं। भगवान के ही खेल में यह सब। सोचना इस इस रूप में वे आये हैं। धैर्य सह्यशक्ति दीजिए-प्रार्थना करना। मन भगवत् परिवेश में रहने से ही यात्रा अनुकूल होती है। हाथ में काम मन में जप, प्रयोजनानुसार वाक्यालाप।

अधिक समय बैठ कर जप न कर सकने से भी संसार के सब आकर्षण से अपने को हटाकर सर्वक्षण उनको स्मरण रखना, यही साधक का प्रयोजन है।

तत्स्मृति छोड़ कर और कोई काम ही नहीं होता।

त्याग का आश्रय न होने से वैराग्य का आश्रय नहीं पाया जाता। वैराग्य न होने से, असली अनुराग नहीं होता।

श्रीकृष्ण जप-ध्यान, उनम प्रेम, आकर्षण इस प्रकार होना, जिससे कष्ट सब इष्ट ही; इसीलिए उनके ही ध्यान म, उनकी ही सब क्रिया उनके हाथ का यन्त्र, उनके चरणा में मन को रखना। उनका मन्दिर, शरीर साफ सुथरा रखना, उनके जप चिन्तन से शरीर की सब क्रियाएँ कृष्णमय बनाने की कोशिश करना।

यह अभावबोध जगना तो स्वाभाविक है। यह तो उनका ही स्वभाव है। सर्वहारा माने सब पाना। वे दयालु, कृपालु जब जो करते हैं सब ही मंगल के लिए, पर सामयिक कष्टदायक निश्चय ही होता है। वे जब सर्वहारा रूप में प्रकाशित होते हैं, आशा-सब नाना रूप में भी प्रकाशित हागे। सत्य के आलोक का सहायक जो उनका अभावबोध तो मंगलकर है, सत्य की स्मृति जगा देते हैं इसीलिए। वे तो सर्वत्र सर्वक्षण हैं। स्वभाव जागरण की कोशिश करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है।

कागज की पतंग जैसे एकमात्र धागे के सहारे हवा में उड़ती है, उसी प्रकार योगी लोग शरीर में श्वास और संस्कार का सूत्र पकड़कर शून्य में उठना, सूक्ष्म होना, बृहत् होना, अदृश्य होना इत्यादि अनेक प्रकार की क्रीड़ा कर सकते हैं।

शरीर मन के राज्य में ही विरुद्ध शक्ति का आधिक्य स्थिरभाव से बैठना, स्थिरासन में चेतना की धारा लेकर दीर्घ समय रहने की कोशिश करना। मुक्त आकाश में जैसे वर्षा में अनावृत वृक्ष पल्लवित होकर ऊँची गति की स्थिति में

अपना रूप प्रकाश करते हैं, वैसे ही साधक जीवन में भी इष्ट लक्ष्य में गति, गत चिन्ता शून्य चेष्टा, सरल सीधी नव भाव अनुभव की दिशा देकर मन को सरस उन्मुख रखने की चेष्टा करता है। शीघ्रातिशीघ्र लक्ष्य पहुँचने के रास्ते में पथिक गण जैसे लौट कर देखते नहीं हैं कि रास्ते में कितनी दूर तक आया, क्या देखकर आया, और क्या फल मिला, ठीक, उसी तरह साधक जीवन में भी पिछली भावना त्याज्य है। लक्ष्य पूर्ण रखने की कोशिश करना। मनोराज्य में जितनी देर, इष्ट रस कल्पना होने से भी इष्ट राज्य में विचरण की दिशा लेनी चाहिए।

बहुत सुन्दरता से आनन्द का खेल खेलना सीखो। ऐसा होने से खेल के भीतर से ही खेल का चरम पाओगे समझे?

निन्दा को गोबर के समान समझना। गोबर यदि ऐसे ही पड़ा रहे तब वह नष्ट हो जाता है, किन्तु मिट्टी के साथ मिलकर यदि खाद हो तब उसे पेड़ की जड़ में देने से कितने सुन्दर सुन्दर फल और फसल होते हैं। उसी प्रकार निन्दा को यदि साधक सहन कर सके अर्थात् शरीर में स्वीकार कर सके, उससे फल अच्छा ही होता है। जमीन ऊर्वर होती है। देखो निन्दा कितनी अच्छी चीज है। निन्दा भी वही एक है। भगवान् के ऊपर ही निर्भर करना। वासना जनित जो कष्ट, बाधा-विघ्न आते हैं उनका ही करुणहस्त सत्य मान लेना पड़ेगा। व्याकुल होने से नहीं चलेगा। व्याकुल होना चाहिए, भगवान् के लिए, उनका जवाब अभी तक नहीं मिला, अमूल्य समय वृथा चला जा रहा है। विषय वासना में अस्थिर होकर मन और शरीर को क्लिष्ट नहीं करना चाहिए।

सब दो। सब मिलेगा! उन पर पूर्ण रूप से निर्भर रहो।

विषय वासना से मुक्त होने के लिए जब तुम भगवान् की और उन्मुख हागे, तब तुम्हारी अन्तःशक्ति की वृद्धि होगी। अभ्यास करो भगवत् चिन्ता में अपने को बाँध लो, मन लगे या

न लगे। आशा है कि कभी मन लग जायेगा; एवं लगता है भी।

## सेवा

भगवत् बुद्धि से सर्वजीव सेवा करना। जो एकमात्र भगवान् को लेकर दिन रात चौबीस घण्टे स्थित हो सके हैं वे सर्व जीव की महासेवा में व्रती बने हैं। उनकी सभी क्रियाएँ जीवमात्र के लिए आदर्श हैं। सर्वरूप में, अरूप में भगवान् ही एकमात्र हैं। तद्ज्ञान से, भगवद् बुद्धि से सेवा करने पर चित्तशुद्धि, मंगल एवं कल्याण होता है। धैर्य ही परमार्थ की भित्ति है। धर्मपथ के यात्री का सहज स्वरूप प्रकाश की दिशा होनी ही है। भगवद् बुद्धि से सेवा करना उससे भगवान् की ही सेवा होती है। सभी भगवान् की सृष्टि है, भगवान् इस प्रकार सेवा ले रहे हैं। तद्बुद्धि से जन-जनार्दन की सेवा करना। महात्माओं की सेवा, चलायमान् मन्दिर भाव से करना। मन्दिर विग्रह की यथाशक्ति सेवा करना।

चौबीस घण्टे यदि किसी का भगवत् स्मरण, जपध्यान चिन्तादि में व्यतीत हो तो जन-जनार्दन की सेवा में ही वह सर्वक्षण व्रती रहता है और यदि देखा जाय कि हर समय जप-ध्यानादि लेकर व्रती रहा नहीं जाता, तब वह निज इष्ट जनार्दन, जो सबम समभाव से हैं, जितना अधिक समय रहे तद्ज्ञान से सेवा करना। उससे भी चित्त शुद्ध होता है।

सेवाबुद्धि से यदि संसार किया जाय तब संसार बंधन का कारण नहीं होता। लक्ष्य उन्ही का ही रहता है। पर उस सेवा बुद्धि में लिप्त रहने के लिए, जैसे तुम लोग दिन में एक बार चाबी देते हो, उसी प्रकार सुबह शाम एक बार चाबी देने की कोशिश करना। अर्थात् थोड़ा समय स्थिर भाव से बैठ कर उनका ध्यान, जप करना।



कोई कोई सोचते हैं कि अतिथि सेवा करना समय नष्ट करना है, माँ की सेवा करना ही असली सेवा है। तब यह शरीर कहेगा कि जिन्होंने यहाँ आकर शुद्ध भाव लेकर सत्संग में योग दिया है, उनकी सेवा के लिए काम तो जन-जनार्दन की सेवा है। इससे परमार्थ पथ की सहायता ही होती है।

### ज्ञान-अज्ञान-माया-अविद्या

भगवान् ने जीव को अज्ञान के पर्दे से ढकने पर भी उसम ज्ञान का दरवाजा भी रख दिया है। वह उस दरवाजे से मुक्त हो सकता है। पर याद रखना पड़ेगा कि परमवस्तु पाने के लिए, भगवान् को पाने के लिए ज्ञान अज्ञान के ऊपर उठना पड़ता है। जब तक ज्ञान और अज्ञान हैं अर्थात् भेदबुद्धि है, तब तक ब्रह्म को पाया नहीं जाता। जब पाया जाता है तब समस्त भेदज्ञान का लय हो जाता है। निज स्वभाव में स्थिति लाभ करते हैं।

माया में रहकर ही माया कहाँ से आती है समझना कठिन है। उनको जानने की चेष्टा करो। अपने को जानना माने उनको जानना। अपने को पाने से ही सब प्रश्न का समाधान होता है। माया रहते हुए माया को जानना कठिन है।

जब से भगवान् तब से ही माया। भगवान् कब नहीं? इसलिए माया भी अनादि है। अपने को पाने की चेष्टा करनी चाहिए दासरूप म, चाहिये आत्मरूप म।

एक महामाया, और एक विषयमाया--विषयभोग। तुम अमृत के यात्री उनके पथ पर न चलो तो विघ्न है। विभूति में फँसे मत रहना। विभूति भी एक स्थिति मात्र है। विभूति से चरम परम मिलेगा नहीं, शक्ति लाभ करके उसे क्षय मत करना। आत्म

प्रकाश के लिए प्रयत्न करना, नहीं तो विघ्न पड़ेगा।

ॐतत्सत्